मध्यकालीन भक्ति परक साहित्य और राजनीति एवं संस्कृति

प्रत्येक युग की साहित्यिक चेतना के निर्माण में तत्कालीन परिस्थिति एवं उसकी पृष्ठभूमि का योगदान महत्वपूर्ण रहता है । इस प्रकार वह अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की देन के लिएं किसी समय विशेष के अनुशीलन या मूल्यांकन का प्रयास उनकी पृष्ठभूमि पूर्ण परीक्षण के बिना अस्पष्ट व अपयप्ति ही कहा जाता है । हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के समय इतिहासकारों ने भक्तिकाल का मूल्यांकन करते समय उसकी पृष्ठभूमि का जो विवेचन प्रस्तुत किया है उसी को आधार बना कर हम यह सर्व सम्मति से कह सकते हैं कि उसका मूल आधार उत्तर भारत में प्रवर्तित भक्ति आन्दोलन है ।[1]

मध्यकालीन भक्ति परक साहित्य का विवेचन करते समय उस काल का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है । क्योंकि साहित्य बिना पृष्ठभूमि के आधार के रचा ही नही जा सकता है । यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वीरगाथा काल की समाप्ति के पश्चात भारत वर्ष एक विचित्र संक्रमण काल से गुजर रहा था सारी परिस्थितियों विचित्र स्वरूप धारण कर चुकी थी । हिन्दु राजा चारों ओर से निराश हो चुके थे । उन्हें न अपने बाहुबल पर विश्वास था नही अपनी तलवार पर भरोसा ही रह गया था । वे सभी पराजित हो चुके थे अपनी सामुहिक पराजय का गुणगान वे किस प्रकार कर सकते थे क्योंकि सर्वत्र विजयी मुसलमानों का ही बोलबाला था । चारो ओर का वातावरण कडूआहट से भरा हुआ था । मुस्लिमों के अत्याचार अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुके थे । हिन्दुओं के सामने ही उनके मंदिर गिराये जाते थे व उसी स्थान पर मस्जिदों का निर्माण किया जाता था । मूर्तियों को सरेआम तोड़ा जाता था । भगवान न स्वयं अपनी ही रक्षा कर पाते थे नही उनके पण्डेय-पुजारी इस अत्याचार का विरोध कर पाते थे। सोमनाथ की मूर्ति के नष्ट होने से तो जैसे मूर्ति पूजा की जड़ ही हिल गई थी।

पत्थर की मूर्ति को बचाने के लिए एक पुजारी ने गजनवी को धन का प्रलोभन दिया था उस पर भी उसने उस मूर्ति को तोडने से पहले यह कहा था कि मैं मूर्ति तोडने वाले के नाम से विख्यात होना चाहता हूँ व मूर्ति के टुकड़े टुकड़े कर दिये थे ।[2] आस्था रखनेवाले मनुष्य अपने समक्ष ही अपने आराध्य देवों की दुर्दशा देख चुका था । मुसलमानों ने उन्हे यह स्पष्ट कर दिया था कि जिन्हे वे भगवान समझ रहे थे वे निर्जीव पत्थर मात्र है । पत्थरों की निर्जीवता जनता के समक्ष स्पष्ट हो चुकी थी ।[3] मुसलमान विजेता हिन्दु जनता को बलति मुसलमान बना रहे थे । हिन्दु समाज का अस्तित्व ही खतरे मे था । साकार-ईश्वरोपासना करनेवाले निराकार की ओर झुकने लगे थे । चूंकि विजेता मुसलमान ऐकेश्वरवाद के समर्थक थे - उन्होने अपने यहां के बहुदेववाद का खुल कर विरोध किया ऐसे समय निसहाय जनता को एक सम्बल की आवश्यकता थी जो उनका पथप्रदर्शन कर सकें साथ ही मुसलमानों का विरोधी भी न हो तथा ऐक भक्तिमार्ग का प्रतिपादन करे । वैसे भी किसी भी रुप में ईश्वर सत्ता की पुनःस्थापना ही इसका मूल उद्देश्य था । इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए श्याम सुन्दर दासजी की इन पंक्तियों का उद्धरण आवश्यक प्रतीत होता है -

मूर्तियों की अशक्तता वि.सं. १०८१ में बड़ी स्पष्टता से प्रकट हो चुकी थी जबकि महमूद गजनवी ने आत्मरक्षा से विरत हाथ पर हाथ रखे श्रद्धालुओं के देखते-देखते सोमनाथ का मंदिर नष्ट कर उनमे से हजारों को तलवार के घाट उतारा था ओर लूट में अपार धन प्राप्त किया था । गजेन्द्र की एक ही टेर सुनकर दोड़े आनेवालें, ग्राह्य से उसकी रक्षा करने वाले सगुण भगवान जनता के घोर संकट काल मे भी उसकी रक्षा के लिए आते हुए न दिखाई दिये । अतएव उनकी ओर जनता को सहसा प्रवृत्त कर सकना असंभव ही था । उधर योग प्रधान नाथपंथ का प्रभाव देश में बहुत बडा हुआ था । सुफी फकीर भी अपने प्रेम और उदारता के कारण जनता को अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे । इस कारण लोगो ने सगुण भक्ति का उस समय वैसा

अनुसरण न किया जैसा आगे चलकर - कबीर आदि संत कवियों को किया और भक्ति में नामदेव जैसे सगुण-भक्त को ज्ञानाश्रित निर्गुण भक्ति की ओर झुकना पड़ा । वास्तव में नामदेव का निर्गुणोन्मुख होना सगुण भक्ति धारा के लिए एक पराजय की स्थिति थी । उस समय परिस्थिति निराकार ओर निर्गुण ब्रह्म की भक्ति के ही अनुकूल थी । यद्यपि निर्गुण की शक्ति का भलीभांति अनुभव नही ककिया जा सकता उसका आभास मात्र मिल सकता था । संत कवियों ने अपनी भक्ति के द्वारा भारतीय जनता के हृदय में अपूर्व आशा उत्पन्न की ओर उस समय विपत्ति की अथाह जलराशि के उपर बने रहने की उत्तेजना दी । यद्यपि सहायता की आशा से बढ़े हुए हाथ को वास्तविक सहारा सगुण भक्ति से ही मिला और केवल रामभक्ति ही उसे किनारे पर लगाकर सर्वथा निरापद कर सकी और उससे जनता पर होने वाले कबीर-दादू रैदास आदि संतो के उपकार का महत्व कम नही हो जाता-

संतों का महत्व इसीलिए अधिक है क्योंकि उन्होने संक्रमण काल मे जनता का पथ प्रदर्शन किया था ।

विद्वानो का कथन है कि - संक्रांति काल में कला विचारों का अनुसरण करती है और शान्तीकाल में विचार कला का अनुसरण करते हैं अर्थात् संक्रान्तिकाल में साहित्य की कला पक्ष पुष्ट नही हो सकता केवल भाव पक्ष ही पुष्ट होता है ऐसे में साहित्य सन्देश देने का कार्य करता है, मनोरंजन करने का नही संत कवियों के समक्ष उस समय अनेको कठिनाइयाँ थी । मूर्तिपूजा, वर्णव्यवस्था अवतारवाद कर्मकाण्ड तथा जांति-पांति आदि का इन कवियों को खण्डन करना था ।[4]

उस काल में सवर्णजातियों का अधिक बोलबाला था । शूद्री के हेय दृष्टि से रखा जाता था । कबीर आदि संत कवियों ने इस बात के विरूद्ध आवाज उठानी शूरू करदी और उच्च कोटि को भी उनकी प्राचीन पुरानतपंथी बातों के लिए धिक्कारना शुरू कर दिया था

। उनकी नजर में सभी एक समान थे । सभी एक ही जात के होनें चाहिए वह है मनुष्यत्व उसको ही प्रधानता दी जानी चाहिए और इसी मनुष्यत्व को बचाने के लिए उन्होने अपने साहित्य में पाखन्डों का खुलकर विरोध किया उन्होंने जनमानस को उसकी ही भाषा में साहित्यिक उपहार प्रदान किये जो भाषा उनकी साध्य थी उसी को साधन बनाया । संतकवियों ने जनता व उच्च वर्ग के बीच की खाई को पाटना चाहा । इतिहास इस बात का साक्षी है कि संत कवियों के समान लोकप्रिय होने का गौरव बहुत कम कवियों को प्राप्त है । संत कवि निम्न वर्ग से लेकर उच्च वर्ग तक के व्यक्ति को एक सामान्य भावभूमि पर लाकर उनका परिचय मानवता के माध्यम से कराना चाहते थे । हिन्दु व मुसलमान पहले मनुष्य है बाद में कुछ और यह सर्वप्रथम संत कवियों ने समझा और उन्होंने मानवता का एक ऐसा क्षेत्र तैयार किया जहां मनुष्य मनुष्य के बीच कोई खाई नहीं थी कोई व्यवधान नही था । और इसी की वजह से समाज के निम्न वर्ग में आज जो भी चेतना दिखाई देती है उसका बहुत श्रेय इन्ही संत कवियों को है ।[5]

कुछ समय के लिए समाज पर संत कवियों के विचारों का प्रभाव पड़ा उन्होने पुराने ढोंग ढकोसलों से परे हटकर जनता को उनकी सहज व सीधी भाषा मे ज्ञान दिया उस काल का संत कवियों की रचना मे बहुत अधिक साहित्यिक सौन्दर्य अन्यकालों के समान नही था परन्तु उनका साहित्यिक महत्व कुछ कम नही था -

डॉ. श्याम सुन्दरदासजी के द्वारा उनके साहित्यिक महत्व को इस प्रकार प्रतिपादित किया है-

शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से देखने पर भी हम संत कवियों का एक विशेष स्थान पाते हैं यह ठीक है बिहारी व केशव की भी भाषा की प्रांजलता का अभियान ये कवि नही कर सकते और न सूर व तुलसी की भी स सरलता और व्यापकता ही इन कवियों में पाई जाती है । यह सब होते हुए भी इस कवियों के साहित्य

का स्थान अत्यन्त उत्कर्षपूर्ण तथा उच्च समझा जायेगा क्योंकि इनकी भाषा मं प्रभावोत्मकता बहुत अधिक है । कविता के लिए उन्होने कविता नही की है । उनकी विचार धारा सत्य की खोज में बही है । उसी का प्रकाशन करना उनका ध्येय है । उनका भावों का प्रदर्शन ही ध्येय था भाषा का नही वैसे मध्यकालीन भक्तिपरक साहित्यका विवेचन करने पर हमे यह स्पष्ट होने लगता है कि लोदी वंश के अन्त के समय मुगल शासकों के अभ्युदय का समय था । इसी समय देश के राजपूत राजे तथा अन्य शासक आपस में संघर्षरत थे इसीलिए वे निर्बल हो चुके थे । जनता दुःखी थी । उनकी सुननेवाला कोई नहीं था क्योंकि इस शासन मे सारे देशके मुसलमानों का ही एकाधिकार था । राजपूत कभी उनके वश मे थे । अकबर ने विभिन्न स्थानो पर विवाह सम्बन्ध स्थापित करके अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी । देश मे मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दु जनता के हृदय के गौरव गर्व व उत्साह के लिए अवकाश न रह गया।

आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल ने लिखा है - अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था ।

ऐसे वातावरण में यदि साहित्य की रचना होगी तो वह निःसंदेह भक्ति से परिपूर्ण ही होगी इसी लिए मध्यकालीन भक्तिपरक साहित्य का मूल उद्देश्य ईश्वर की निराकार या साकार भक्ति करना ही रह गया था । चूंकि उस समय मे हिन्दू समाज मे भी हताशा फैली हुई थी ।[6] दैनिक जीवन रीति-रस्म रहन-सहन पर्वत्यौहार आदि की दृष्टि से तत्कालीन भारतीय समाज दो भागो में विभक्त हो चुका था। एक तो वे लोग थे जो शाही घराने के, सगे सम्बन्धी थे वे सर्व सुविधा सम्पन्न थे या दूसरे असुविधा ग्रस्त लोग थे जो कि निम्न वर्ग के लोग थे जिन्हे केवल ईश्वर पर ही भरोसा था । उस काल का साहित्य मूलतः इस दूसरे वर्ग को ध्यान में रखकर रचा गया साहित्य है । उस काल के याने मध्यकालीन धर्मो में हिन्दु जैन बौद्ध पारसी यहुदी ईसाई प्रमुख थे जिनका सम्पर्क द्वार उन्मुक्त था । लोक

विश्वास पर आधारित लोक धर्म की निष्ठा किसी भी धर्मविशेष मे नही थी ।

उस काल के साहित्य मे भी यह स्पष्ट होता है वैसे तो उ काल मे विदेशी शासकों के अत्याचारों से राज्याश्रय समाप्त हो चुका था काव्य का स्थान राज्य दरबार में हटकर साधु संत की कुटिया हो चुका था ।[7] कवियो ने इन सभी विकट परिस्थितियों को यथार्थ में भोगा था और इसीलिए उन्होने ईश्वर के गुणों का गान करना ही श्रेष्ठ समझा था । इस्लाम के प्रचार के नाम पर मुसलमान हिन्दुओं के साथ उनके देव मंदिरों के साथ उनके धर्म के साथ मनमानी कर रहे थे । इसीलिए सच्ची धर्मभावना का दम्भीसाधुओं संतों वज्रयानी सिद्धों कापालिकों तथा अन्य रमते जोगिया की वजह से ह्रास हो चुका था । हिन्दु जनता अपने भगवान के अस्तित्व के प्रति अशांकित हो चुकी थी ।

ऐसे संक्रमण काल में भक्ति आयोजन ने जाति को मूलतः व्यक्ति की उच्चतरकी आधारमान कर भक्तिवान तथा नैतिकता को उच्चता की गरिमा प्रदा न की इससे वास्तव में विश्रृंखलित होती हुई हिन्दु जाति को संगठित कर फिर से नवीन प्राण स्पन्दन दिया है ।[8] क्योंकि उन्हें कही भी द्रौपदी की पुकार सुन कर आने वाले मुरारी कही दिखाई नही देते थे । हर ओर निराशा जनक परिस्थिति उत्पन्न हो रही थी इस परिस्थिति का चित्रिण करते हुए आचार्य रामचन्द्रजी शुक्ल ने लिखा है - जिस समय मुसलमान भारत वर्ष मे आए उस समय सच्चे धर्म भाव का बहुत कुछ ह्रास हो गया था । प्रतिवर्तन के लिए बहुत कड़े धक्को की आवश्यकता थी । क्योंकि भक्तिकाल के प्रारम्भ काल मे हिन्दु जनता के मन में न कर्म के प्रति आस्था रह गई थी ओर न ही भगवान की कृपा मे विश्वास रह गया था। हिन्दी सांहित्य के इतिहासकारों ने भक्तिकाल को स्पष्ट करने के लिए जो पृष्ठभूमि का विवेचन प्रस्तुत किया है । उसके आधार पर प्रथम मत में उन विदेशी और भारतीय विद्वानों कहा जिन्होंने भक्ति आन्दोलन को भारतेतरधर्मो की देन कहा है । डॉ. ग्रियसन बेबर कीथ आदि

पाश्चात विद्वान भक्ति काल का ईसायत की देन मानते हैं [9] जबकि डॉ. ताराचन्द प्रो हुमायु कबीर आदि ने इसे मुस्लिम प्रभाव का परिणाम सिद्ध करने की कोशिश की है ।[10]

दूसरे मत मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रतिपादित बाते हैं[11] राजनीतिक परिस्थितियों से उत्पन्न निराशा और इस कारण पलायन वादिता का सहारा लेकर जनसमुदाय का भक्ति की ओर मुढ़ना । इस प्रकार उनके अनुसार भक्ति काल मुस्लिम आक्रमण से पराजित पराधीन हिन्दु जनता की निराशा जनक मनोवृत्ति का परिणाम ही जिसके लिए वह विवश थी ।[12]

भारत के धर्मसम्प्रदायों की दुरवस्था के बीच चकालदर्शी भक्त कवि जनता के हृदय को सम्हालने ओर लीन रखने के लिए दबी हुई भक्ति को जगाने लगे तात्पर्य यह कि उपयुक्त विवशता के साथ-साथ धार्मिक नेताओने उक्त निराशा का एक प्रकार से निराकरण प्रस्तुत किया ।[13]

दक्षिण से आनेवाली भक्ति की लहर द्वारा उपयुक्त चेतना का अनुप्राणित होना और विशेष कर सगुण भक्ति पर उसका प्रभाव[14]

शुक्लजी के प्रथम मत को सभी का समर्थन प्राप्त हुआ । इसीलिए हिन्दुजाति की लाचारी उसकी असहायता निराशाजनक वातावरण और ईश्वर पर आधारित रहने की एकमात्र विवशता पर विचार करते हुए डॉ. रामकुमार वर्मा ने खिलजी वंश की शासनकाल की परिस्थितियों का चित्रण किया है ।[16]

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आचार्य शुक्ल का नामनिर्देश बिना लिए उपयुक्त मत का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि इस युग का हिन्दी साहित्य एकहृतदर्य पराजित जाति की सम्पत्ति नहीं है ।[17]

उन्होने न तो उस काल की परिस्थितियों की वास्तविकता और न उसमें उत्पन्न होने वाली स्थितियों का विचार किया है । उन्होने

केवल उस स्थिति को ही मौन भाव से स्वीकार करते हुए अपनी सहमति दी है । किन्तु उस काल की परिस्थिति के स्थान पर युगों से चली आ रही हुई भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन धारा के सहज स्वाभाविक विकास को भक्ति आंदोलन तथा भक्ति साहित्य के लिए उत्तरदायी मानते है ।[18]

उनके अनुसार भक्तिकालीन साहित्य उत्पन्न होने न होने के लिए इस्लामी संस्कृति के आगमन का होना आवश्यक नही था ।

अगर इस्लाम नही आया होता तो भी इस साहित्य का बाहर आना वैसा ही होता जैसा आज है ।[19] परन्तु यह चमत्कार कैसा होता यह उन्होने स्पष्ट नहीं किया है ।

उपरोक्त मत आपस में अलग अलग होने से इस पृष्ठभूमि से सम्बन्धित कोई भी निर्णयात्मक विवेचन प्रस्तुत नही कर पाते अतः इन सभी पर विस्तार से विवेचन करना आवश्यक है । भक्तिकालीन साहित्य के उज्जवल स्वरूप से चमत्कृति हुए पाश्चात्य विद्वान डॉ. ग्रियर्सन के जनरल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी मे प्रकाशित अपने एक लेख में श्रीमद्भगवदगीता में भक्ति का सर्वप्रथम उल्लेख करके ईसा के पूरवर्ती काल में उसके रचित होने पर शंका व्यक्त करते हुए दूसरी चालीसवी शताब्दी मे मद्रास-प्रसिद्धी में स्थापित नेस्टोरियन ईसाइयों के प्रभाव के विषय में बल दिया, उसी के अनुसार रामानुजाचार्य की भक्ति के पाप्त भावावेश एवं प्रेमोल्लास के तत्व उक्त चर्चा के माध्यम से प्राप्त ईसाई दर्म साधना की देन है । इसके अतिरिक्त बेवर केनेडी कीथ आदि पाश्चात्य विद्वानो ने भी कृष्ण की जन्म की कथा एवं उनकी बाललीला की कर इस की जन्म की कथा से साम्यपाकर तथा महाभारत के श्वेतदीप को अपनी भूमि समझ कर ग्रियर्सन के मत का समर्थन किया है । बेवर कविने मन प्रायः अत्यन्त के उन चित्रो पर आधारित है जिनमे देवकी का वर्जिन के रूप में तथा कृष्ण स्तनपान का चित्रण मुख्य है । इन विद्वानो के अतिरिक्त भारतीय विद्वान डॉ. भंडारकर के मतानुसार भी बालकृष्ण की कथा ईसा मसीह की

कथा का भारतीय रूप है । जो सीरिया से आई हुई धुमवकड आभीर जाति अपने साथ लाई थी ।[20]

इस प्रकार ग्रियर्सन इसके रचनाकाल के (गीता के) न तो कोई अपनी मान्यता प्रस्तुत करते ही ओर नही उसका कोई भी प्रमाण प्रस्तुत करते है । इससे विद्वानों ने भी इसे ईसा के चारसो वर्ष पूर्व ही माना है ।[21] इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि डॉ. ग्रियर्सन का मत पूर्वाग्रह से ग्रस्त ही माना जायेगा । अन्य विद्वानों के तर्कों का बहुत कुछ खण्डन उनके लेखों मे ऐतिहासिक प्रमाणों के पारस्परिक स्थान से हो पाता है । इस बारे में कुछ मत मतान्तरों का होना स्वाभाविक ही है ।

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने, इन विद्वानों के मतो के प्रत्युत्तर मे विस्तारपूर्वक विवेचन करते हुए जिन से भावनाओं का प्रतिपादन किया है वह सत्य के निकट प्रतीत होती है जो निम्नांकित है ।[22]

विद्वानों ने कृष्ण की कथा को जिस आभीरजाति द्वारा भारत में आने की सम्भावना की है वह जाति मूलख्य में इसी देश की रही है । और उस वक्त का धर्म अपना आराध्यक बालकृष्ण को लेकर भक्ति प्रधान रहा हो ।[23]

इसके अलावा यह आभीरजाति दक्षिण प्रदेश की आयरजाति थी जो ग्वाले होते थे । वनप्रदेश के देवता मायोर की बाललीला मे रम जाते थे ।[24]

इन लेखकों के अलावा इसके कितने ही लेखकों जैसे कि -

बेबर तथा भंडारकर आदि की संभावना यह है कि कृष्ण की कथा क्राइस्ट की कथा का रूपान्तर है ।[25] परन्तु क्राइस्ट के साथ कही पर भी स्त्रीपात्र नहीं है जबकि कृष्ण के सदेव राधा होती है।

द्विवेदी जीने कृष्ण के साथ राधा की कथा, बालकृष्ण मे देवत्व

की प्रतिष्ठा को स्पष्ट किया है ।[26] ईसाई धर्मभावना व वैष्णव धर्मसाधना मै काफी कुछ अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है ।[27] वैसे भी वैदिक धर्म में प्रारम्भ से भक्ति का आरम्भ हो चुका था । यह सभी विद्वान एकमत होकर नही मानते हैं परन्तु इस बात से सभी सहमत है कि वैष्णव भक्ति वस्तुतः सात्वतों द्वारा उत्तर मे आरम्भ हो चुकी थी ।[28] और यह सर्वविदित है कि ईसाई धर्म के प्रचार व प्रसार से काफी पहले कृष्ण भक्ति परम्परा पनप चुकी थी और जिसमें उसके आराध्यक श्रीकृष्ण के विविध रूपों का विकास हो चुका था । दक्षिण में भक्तों व आचार्यों ने कृष्णभक्ति के विकास मे सर्वाधिक योगदान दिया था जोकि उत्तर भारत के भक्ति आन्दोलन को भूमिका प्रदान करती थी इस प्रकार ईसाईयों ने भक्ति आन्दोलन की शुरूआत की थी यह बात सर्वथा अनुचित व निराधार है ।[29]

कुछ इसे मुसलमान काल की देन मानते हैं । भक्तिकालीन धर्मसाधना मुस्लिम धर्म के प्रभाव का परिणाम है ।[30] वे भी यही मानते हैं कि दक्षिण की उस भक्ति साधना पर ही आधार रखा जा सकता है जिसमें प्रेरणा प्राप्त करके ही उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। डॉ. ताराचन्द वैष्णव भक्ति साधना के प्रमुख आचार्य रामानुज के समय से पहले ही अरबी व्यापारियों का दक्षिण में डेरा डालना नाथडवली नाम के मुस्लिम संत के धर्मप्रचार के द्वारा हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करवाना दक्षिण के राजा मालाबार के चिरामन पेरूमल वंश के अन्तिम शासक का इस्लाम स्वीकार उसका प्रचार करना आदि बातें इस बात को सिद्ध करती है कि दक्षिण में सामान्य जनजीवन पर मुस्लिम संस्कृति की गहरी छवि थी । उन्होंने तो यहां तक भी कहा है कि स्वयं रामानुजाचार्य भी अवश्य मुस्लिम धर्म से प्रभावित रहे होंगे ।[31] वैष्णव भक्ति के प्रमुख तत्वों में से एक ऐकेश्वरवाद निष्काम भक्ति शरणागतभाव गुरूभक्ति आदि उनकी नज़र में इस्लाम के प्रभाव का परिणाम है ।[32]

यूं देखा जाय तो भी रामानुजाचार्य से पूर्व भी दक्षिण भारत का प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी शंकराचार्यजी पर भी इस्लाम का

प्रभाव है ऐसा माना गया है ।

रामानुजाचार्य से पूर्व दक्षिण भारत मे जो ऐकेश्वरवाद का प्रतिपादन श्री शंकराचार्य जी ने किया था उससे कुछ विद्वान भ्रमित हो गये हैं उनके चरम अद्वैतवाद द्वैत की हर संभावना का निराकरण अपने इस अद्वैतवाद का प्रस्तुत शास्त्रों के आधार पर प्रतिपादन तथा अपनी समस्त गतिविधियों को प्रकट सत्यों की मौलिक पवित्रता की पुनः स्थापना मात्र समझने की प्रवृत्ति आदि सभी ऐसे तत्व है कि जो उन पर इस्लाम के प्रभाव को समर्थन करते हैं । यह सर्वविदित है कि शंकराचार्य का अद्वैतवाद उपनिषदों की देन है ।[33] उनका यह मत मायावाद के साथ जुड़ा हुआ है जिस परपूर्ण रूप से बौद्ध मत के शून्यवाद का प्रभाव है भारतीय ब्राह्मणों या नवअफलातूनी मत से मायावाद का ज्ञान सूफियों से प्राप्त हुआ जिस का आभास इस्लाम मे दिखाई देता है दिनकरजी ने यह भी स्पष्ट किया है कि मुस्लिम ऐकेश्वर वाद व हिन्दु ऐकेश्वरवाद मे मूलभूत अन्तर है व शंकराचार्यजी के विचारों पर दार्शनिक वसुबन्धु की पूरी छाप है इस प्रकार शंकराचार्य पर मुस्लिम प्रभाव की बातें भी बेबुनियाद ही सिद्ध होती है ।

प्राचीन साहित्यों के सभी उद्धरण वेदों उपनिषदों या आगमों मे से प्राप्त होते हैं तो उन पर इस मुस्लिम प्रभाव का होने न होने का सवाल ही नही उठता है । यह सच है कि उस भक्तिकालीन साहित्य में कबीर साहित्य पर सूफियत की स्पष्ट झलक दिखाई देती है परन्तु इसे हिन्दु मुस्लिम संस्कृति के दीर्घकालीन सम्पर्क के परिणाम स्वरूप माना जा सकता है । क्योंकि कबीर के काव्य मे सभी बातों का सम्मिश्रण दिखाई देता है उनके साहित्य में शंकर का अद्वैतवाद योगियों का हठयोग विरह की पीड़ा सभी कुछ एक साथ दिखाई देता है । उस काल के हिन्दु धर्म व समाज हिन्दी भारतीय कला साहित्य और विज्ञान के क्षेत्रों पर भी मुस्लिम प्रभाव दिखाई देता है ।[34]

अतः यह स्पष्ट होता है कि उत्तर भारत का भक्ति आन्दोलन या भारतीय धर्म साधना इस्लाम की देन न होकर भारतीय धर्मसाधना

के स्वाभाविक एवं सहज विकास का ही फल है । जब भी दो संस्कृतियाँ परस्पर मिलती है तब स्वाभाविक रूप से ही एक दूसरे पर एक दूसरे का प्रभाव पड़ता है जो जिसमे एक दूसरे के श्रेष्ठ तत्वों को जनमानस सहज रूप से स्वीकार कर लेता है एवं इसे युगगत प्रभाव ही कहा जाता है । यह उस संस्कृति की ग्राह्य भक्ति की विशालता को ही प्रदर्शित करता है । ऐसी अवस्था मे वह किसी की देन नही कहा जाता है । हिन्दी साहित्य मे भक्तिकाल की पृष्ठभूमि मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रतिपादित मत का समर्थन करने वाले अनेकों विद्वान रहे हैं उन सभी के अनुसार भक्ति साहित्य को और रूझान इस लिए हुआ क्योंकि राजकीय परिवर्तन से हताश जनता की निराशाजनक मनोवृत्ति को सहारे की आवश्यकता थी । डॉ. रामकुमार वर्मा की शुक्ल जी के मत का समर्थन करते हैं ।[35]

भक्ति आन्दोलन राजकीय परिवर्तनों से हताश जनता की निराशाजनक मनोवृत्ति का परिणाम है ।[36] शुक्लजीने उसकाल की परिस्थितियों के अध्ययन के बाद ही अपना यह मन्तव्य प्रकट किया था । परन्तु यदि यही बात मूल में हो तो वीरगाथा काल की समाप्ति के तुरन्त बाद भक्तिकालीन रचनाएँ दिखाई देनी चाहिए परन्तु ऐसा नहीं है ।

द्विवेदीजीने दक्षिण में भक्ति के कारण उस काल मे लोकप्रवृत्ति का शास्त्रसिद्ध आचार्यो और पौराणिक ठोस कल्पनाओं से युक्त ही जाना है । यही बात उत्तर भारत के विषय मे भी सत्य है ।[37] इसके एक हजार वर्ष बाद भारतीय धर्मलोक मत की ओर अग्रसर हुआ था जो दक्षिण में आलवारों को प्राप्त हुई थी इसके पश्चात् आचार्य परम्परा ने इसे शास्त्रों के द्वारा पौराणिक धर्म से जोड़ दिया । द्विवेदी जी इस बात से प्रभावित होकर उत्तर भारत मे भी भक्ति आन्दोलन का यही स्वरूप पाते हैं ।[38] उनके अनुसार धर्म तो जनमानस के अन्दर छुपा हुआ था जिस प्रकार बीज धरती के अन्दर पड़ा रहता है । सही समय पर उचित नमी व हवा पाकर कह अपना विकास करने लगता है और एक दिन पूर्ण वृक्ष का स्वरूप प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार भक्ति को जनमानस के हृदय मे सुशुप्तावस्था मे थी

ही परन्तु भक्ति आन्दोलन का सहारा पाकर वह अपनी प्रगति कर सकी ।

उत्तर भारत के भक्ति आन्दोलन से उसे वृक्ष बनने में मदद मिली और वह सम्पूर्ण रूप से विकसित हो सका । उसे सहारा देने में कुछ मुस्लिमों से टक्कर लेनेवाले हिन्दु राजा जो कि अपना ध्येय हिन्दु धर्म की रक्षा करना निर्धारित कर चुके थे । इसीलिए उत्तर भारत की धार्मिक चेतना अत्यन्त जागृत दिखाई पड़ती थी । भक्तिकाल की लोक प्रवृत्ति का प्रतिनिधि एवं इस युग के कवि करती है । उस काल का साहित्य वस्तुशिल्प श्रुति सम्मत शास्त्रपुराण की सीमा को भी पीछे छोड़ चुका था । उसने विषम परिस्थितियों में भी अपना सृजन कार्य दूने वेग से जारी रखा । उस काल के कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से जन सामान्य की दबी हुई लोक चेतना को जागृत करके नवीन रूप प्रदान किया था । किसी भी साहित्य को हम राजनैतिक परिस्थिति से अलग हट कर नही देख सकते हैं । अतः भक्तिकाल की राजनैतिक परिस्थिति का विश्लेषण करते समय हमे तैमूरलंग के आक्रमण के पश्चात अवशिष्ट तुगलक वंशीय साम्राज्य का अस्तित्व विहीन सी अवस्था से माना जा सकता है ।[39] इस युग को जनसाधारण के लिए थोड़ा सा राहतदायक युग कहा जा सकता था है क्योंकि सुलतानों ने अपनी छबि सुधारने के लिए आर्थिक शोषण कम कर दिए थे ताकि सामान्य जनता उन्हें गलत नही समझे। हिन्दु जनता भी थोडी राहत महसूस कर रही थी । क्योंकि अकबर व जहांगीर के शासनकाल में धार्मिक अत्याचार नहीवत थे । उधर दक्षिण के हिन्दु राजा भी मुस्लिम राजाओं को अपना लोहा मनवा चुके थे कि वे किसी भी प्रकार से कम नही है । और इसी तरह उत्तर के राजपूत शक्ति, मेवाड़ की राजपूत शक्ति, दक्षिण में विजयनगर की स्थापना हो चुकी थी । ये अपने पड़ोसी मुस्लिम राजाओं को लगातार संघर्षरत रखते थे जिसमें कई बार मुगलों को वह भय होने लगता था कि दिल्ली के सिंहासन पर भी ऐसा न हो कि राजपूत राजाओं का आधिपत्य स्थापित हो जाये इसीलिए अक्बर ने वैवाहिक

सम्बन्धों की आड़ लेकर राजपूतों से मैत्री स्थापित की । जिससे भी राजपूतों के महत्व का पता चलता है ऐसी स्थिति में राजनैतिक हताशा वाली शुक्लजी की मान्यता निराधार व असम्भव जान पड़ती है ।

इस प्रकार यह नही कहा जा सकता है कि उस काल में चारो ओर नैराश्च ही था यह सत्य है कि मुसलमान काल की परिस्थितियों से हिन्दु जनमानस मानसिक व आर्थिक दोनों ही तरह के संक्रमण काल से गुजर रहा था । क्योंकि उस काल में दोही प्रधान वर्ग थे। एक अमीर व दूसरा गरीब वर्ग । गरीबों को शोषण हर ओर से हो रहा था व अमीर वर्ग को विलासिता से फुर्सद नही थी कि वह राजकरण की बातों पर ध्यान देवें । मुस्लिमों ने कठोर शासन में हिन्दु जनता त्रासित थी उन्हे अपनी संस्कृति के विकास व दूसरी संस्कृतियों के विनाश की तीव्र आकांक्षा थी । उनमें अपना संगठन भी था वे रह रहकर हिन्दुओं पर अत्याचार करते थे ताकि उनका मनोबल टूटने लगेपरन्तु हिन्दु अपने आत्मिक बल के सहारे टिके हुए थे क्योंकि एक ओर उनकी वर्ण व्यवस्था छिन्नभिन्न हो चुकी उसके स्थान पर जाति भेद ने स्थान ले लिया था, अनेको विदेशी जातियों का समाज में समन्वय हो चुका था अनेको जातियों का परस्पर मेल अनेक धार्मिक सम्प्रदायों का प्रचलन व अनेको नये उद्योगधन्धों या व्यवसायिक संगठनों की उत्पत्ति आदि के उसकाल में परिवर्तन होते रहे थे । धार्मिकता की कुटुंबता से हिन्दु जाति त्रस्त थी एवं दिन प्रतिदिन हिन्दु धर्म में जटिलताएँ आ रही थी । जांतिपांति की भावना अस्पृश्यता मे बदलकर कुछ निम्न वर्गों की जनता के लिए दुःखदायी प्रतीत होने लगी थी । निम्न वर्ग का हीन भावना से ग्रसित था सर्वणों व शुद्रों के बीच की खाई बढ़ती जा रही थी । उस काल के साहित्य से यही स्वर मुखर हो चुका था कि जातिपांति की असमानता आपसी वैमनस्य का कारण बनता जा रहा था तो दूसरी ओर रामानन्द कबीर तुलसीदास जैसे युग पुरुष अपने साहित्य के द्वारा जनजागरण मे जागरूकता लाने का प्रयास कर रहे थे । तुलसीदास जी ने उस काल की समस्याओं को समझकर ही अपने काव्यों में वर्णभेद के

स्थान पर कर्म भेद को सर्वोपरी माना अच्छे कर्मवाला व्यक्ति किसी भी जाति का हो पूजनीय माना जायेगा ।

मध्यकालीन भक्ति के स्वरूप पर विचार करते हुए मुख्य आन्दोलन की दृष्टि पथ मे रखना होगा क्योंकि तुलसी दासजीने अपने साहित्य में किसी सम्प्रदाय या मत के जुड़े रहकर किसी नये मत का प्रतिपादन नहीं करना चाहिए थे वे तो केवल रामनाम को केन्द्र में रखकर ही भक्ति का ताना बाना बुनते है जो कि अपने आचरण में प्रमाणित भी करते हैं उनके उच्च आदर्शों का पालन राम करते हैं मूल्यो शील, मर्यादा करूणा स्नेह आदि से वे सबसे जुड़े रहते हैं ।[40] इसीलिए उस काल में तुलसी दासजी व अन्त भक्त संत इस बात से सहमत थे कि जो कुछ भी उस काल मे हो रहा था वह हिन्दु धर्म व मुस्लिम धर्म दोनों के लिए आपसी वैमनस्य बढा रहा था ।

क्योंकि हिन्दु पुरोहितों की तरह से मुसलमान मुल्ला भी समाज मे जातिभेदों और वर्ग विभाजनों सुदृढ़ करने में ही मदद करते थे।[41]

मध्यकाल का भक्ति परक का द्वितीय उस काल ही में रचा गया था । जब चारों ओर विषमता थी फिर भी उस काल के संतो ने उस काल के भक्त कवियों ने भक्ति परक रचनाओं का सृजन किया उनके साहित्य परम्परागत साहित्य भी था सम्प्रदायों, पौराणिक आस्थाओं दक्षिण के भक्तों आचार्यों सभी का सहयोग रहा उस काल मे केवल विष्णु के अवतारों की ही नही अनेक पौराणित देवी-देवताओं के प्रति भी धार्मिक आस्था यहां की जनता में वर्तमान थी और उनकी पूजा उपासना करती थी ।[42] उस काल का साहित्य प्रायः पद्यमय था और वहां साहित्य काव्य का पर्याय है इसीलिए काव्य रसिकों अथवा साहित्य पारीखियों का ध्यान यथावसर उन मानदण्डों की ओर आकर्षित हो जिन्हे उत्कृष्ट काव्य की कसोटी मान लिया गया है । जो किसी न किसी काव्य शास्त्रीय परम्परा का अनुशासन करते हैं। वहां तक विदित है काव्य शास्त्रीय परम्परा का सूत्रपात ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी मे भरत के नाट्यशास्त्र से हुआ था जबकि विभिन्न अभिनयो

के सन्दर्भ में श्रृंगारादि रसो को महत्व प्रदान किया जाने लगा था आगे चलकर क्रमशः भामहः के अलंकारवाद वामन में रीतिवाद आनन्दवर्णन के ध्वनिवाद कुन्तक की वक्रोक्तिवाद और क्षमद्र के औचित्य वाद का प्रचार-प्रसार हुआ तथा काव्य परीक्षा करते समय इनके द्वारा निर्धारित नियमों की अनुरूपता को मानदण्ड स्वीकार कर लिया गया परन्तु काव्यशब्द के अभिप्राय को वही तक सीमित नहीं रखा गया और उसमें मूल अर्थ की ओर ध्यान बढ़ने लगा जिसका प्रयोग कभी पहले किया जाता रहा था कवि के आधार पर निर्मित काव्य शब्द का अर्थ प्रायः कवि कर्म किया जाता है इसके अन्तर्गत कवि शब्द के मूल अर्थ का समावेश स्वभावतः हो जाता है । कवि शब्द कुछ कष्ट द्वारा निर्मित है जिसका तात्पर्य होता है । जाननेवाला अथवा वर्णन करनेवाला है ।[45]

उपरोक्त स्पष्टीकरण से यह ज्ञात होता है कि कवि हर कोई नही होता है या हो सकत है उसका ज्ञानी होना आवश्यक है उसे साहित्य का ज्ञान होना यह भी आवश्यक है ।

वैसे तो अथर्ववेद मे भी कवि का उल्लेख है उसके अनुसार कवि क्रान्तदर्शी अथवा प्रज्ञावान होता है यही नही ऋग्वेद मे भी मनीषिणः कवयः का प्रयोग हुआ है । यजुर्वेद मे तो कवि मनीषी और स्वयंभूतक के लिए हुआ है । श्रीमदभगवदगीता के अन्तर्गत कर्तव्याकर्तव्य के निर्णय के प्रसंग में कवियों तक ये भ्रम पैदा होने का उल्लेख है । प्रश्नोपनिषद में ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के आधार पर लोक विशेष की प्राप्ति की जानकारी कवियों के द्वारा सुलभ बतायी गई है । फिर भी ऐसे कवियों की कृतियाँ कही काव्य की संज्ञा नही दी गई है । केवल कवि के पर्याय परमात्मा की सृष्टि को श्रुति ये ‘‘देवस्य काव्यम्’’ कहा है । जिसमें कविता के अर्थ का बोध नही होता है इस अर्थ से वेद रचयिता ब्रह्मा को श्रीमद्भागवत में आदि कवि अवश्य कहा गया है । परन्तु क्जो ध्वनि वाल्मिकी को आदि कवि कहने मे योजित होती है वह इसमे नही है ।[46] अतः काव्य के दो लक्षण प्रकट होते हैं :-

(1) काव्य में स्वतः स्फूर्त अथवा अल्पापारूजन्य अभिव्यक्ति का होना

(2) मार्मिक अनुभूति का भाव संचार द्वारा श्रोता या पाठक के मानस में उसे ठीक उसी प्रकार आन्दोलित करने में समर्थ होना जिस प्रकार कवि को उससे प्रेरित होकर अपने मनोरमभावों की अभिव्यक्ति देनी पड़ी थी यदि ऐसा कवि अपनी क्रान्तदर्शिता के कारण परोक्ष ज्ञान को भी प्रत्यक्ष कर दिखाने में सक्षम व समर्थ है तो उसका काव्य आदर्श काव्य तक कहला सकता है । इसी लिए श्रीमद्भागवत श्रीमदभागवतगीता दोनों ने अपने-अपने ढंग से भक्ति साहित्य के संवर्द्धन में महत्वपूर्ण तथा उल्लेखनीय योग दिया है ।[47] यह सत्य है कि मध्यकालीन भक्ति साहित्य केवल साहित्य था यह नही कहा जा सकता कुछ ऐसी रचनाएँ भी थी जो कि साहित्य की कसोटी पर खरी नही उतरती थी परन्तु प्रभावशाली थी । उनमें सन्दर्भ गत विशेषताएँ स्पष्ट दिखाई देती थी । उनमें तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परीस्थितियों की झलक दिखाई देती थी ।

वैसे यह स्पष्ट है कि भक्ति कालीन साहित्य किसी क्षणिक भावावेग अथवा इन्द्रियजन्य भावोन्माद की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है अपितु यह ढोल तथा उर्वर धरातल की उपज है इसी के साधन लौकिक अवश्य है किन्तु इसका साध्य लोकोत्तर अनुभूति है जिससे भक्त को चित्त को अनुपम शान्ति और आनन्द की उपलब्धि होती है ।[48]

भक्ति साहित्य के दो मूल स्वरूप है एक ज्ञानमार्गी और दूसरा प्रेममार्गी । ज्ञान अपने आप में एक उपलब्धि है क्रिया नहीं जिसके आधार पर मनुष्य अपनी मुक्ति पास के क्योंकि अज्ञानी ज्ञान के द्वारा सत्य की प्राप्ति में संदेह कर रहे थे । वादी लोग दूसरी ओर प्रेममार्गी भक्तों को किसी भी प्रकार कर संदेह नही था क्योंकि उनके अनुसार प्रेम भावना के अन्तर्गत वे सभी रागात्मक विशेषताएँ सम्मलित हो जाती है जो ऐसी भक्ति के लिए आवश्यक व अनिवार्य समझी जा सकती है दूसरी ओर उपासना के हिसाब से दो वर्गों मे विभाजन

कर दिया गया सगुण या निर्गुण ।

यहाँ पर सगुण भक्ति मे साकार लीला स्वरूप को आराध्य के रूप में स्वीकार किया गया है वही दूसरी ओर निर्गूण स्वरूप मे बन्ध की भक्ति निर्गुण या निराकार स्वरूप मे की जाती है । निर्गुण स्वरूप ये बन्ध की भक्ति निर्गुण या निराकार स्वरूप मे की जाती है निर्गुण में व्यक्तिविशेष के आत्मबल को पुष्टि मिलती है तो सगुण भक्ति में भगवान के अनुग्रह पर जीवन का समर्पण किया जाता है । दोनों में ही सौन्दर्य है एक में बाह्य दूसरी ओर आन्तरिक सौन्दर्य के दर्शन होते हैं । निर्गुण सगुण मूलतः दोनो ही वैष्णव भक्ति के अन्तर्गत आते हैं ।

हिन्दी भक्ति साहित्य की पृष्ठभूमि में श्रीमद भागवत पुराण की रचना है । जिसे वैष्णव भक्ति में दक्षिण व उत्तर दोनों ही स्थान पर एक सी ही प्रभाव था सगुण भक्ति साधना के लोकव्यापी स्वरूप को के निर्माण में इस ग्रन्थ का महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।[50] श्रीमद्भागवत ही ऐसी रचना है जिसमं लोकमत के साथ-साथ वेदमत का भी निरूपण हुआ है । मध्ययुग में कृष्णलीला के गान का यह प्रमुख आधार था और इसी को आधार मानकर के अनेकों आचार्यों व कवियों ने इस पर टीकाएँ या भाष्य लिखकर उनके महत्व का प्रतिपादन किया है । दक्षिण व उत्तर दोनों स्थान पर कृष्णलीला का गान एक समान उद्देश्य कहा है । डॉ. गुप्त के मतानुसार उत्तर भारत के लिए आन्दोलन का यही सांस्कृतिक प्रेरणास्त्रोत रहा है ।[51]

ईसा की पांचवी छठी-शताब्दी पूर्व से विकसित होनेवाला बौद्ध धर्म कुछं ही वर्षो में अनेकों विकृतियों के परिणामस्वरूप कालान्तर में अनेकों सम्प्रदायों के रूप में दिखाई पडता है । सहजयान और वज्रयान ऐसे संप्रदायों का विकास तथा शास्त्रों की गुह्यसाधना मंत्र तंत्र और वातावरण भी इस युग की धार्मिक आस्था का उल्लेखनीय पक्ष है । डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार मंत्रतंत्र तथा युक्त उनकी साधना ही तत्कालीन लोकसाधना का स्वरूप है । जिसका प्रभावत

कालीन साधारण जनता पर था इसके आते अतिरिक्त नाथपंथीयोग साधना का कबीर आदि निर्गुण धारा के संतो पर पड़ने वाले अत्यधिक प्रभाव को विद्वानो ने स्वीकार किया है ।

इसके अलावा एक तथ्य ऐसा भी है जिस पर सभी आलोचकों ने आचार्यों ने जो विशिष्टाद्वैतवाद संप्रदाय जिसके संस्थादिक रामानुजाचार्य थे । दूसरा विष्णुस्वामी का शुद्धाद्वैतवादी रूद्र सम्प्रधाय (3) निम्बकाचार्य का द्वैताद्वैदतावीद निम्बार्क सम्प्रदाय (4) माध्वाचार्य का द्वैतवादी माध्वसंप्रदाय।[52]

वैसे भक्तिकालीन सगुण धर्मसाधना का दार्शनिकपक्ष इन आचार्यों द्वारा प्रभावित माना गया है यह कहा जाता रहा है कि उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तक रामानन्द का सम्बन्ध रामानुजाचार्य के श्री संप्रदाय से वल्लभाचार्य जी का सम्बन्ध विष्णुस्वामी के रूद्र सम्प्रदाय से जोड़ जाता है । यद्यपि रामानन्द जी के स्वतंत्र व्यक्तित्व और वल्लभाचार्य के विशिष्ट प्रवृत्ति गत सांप्रदायिक गठन को अनदेखा नहीं किया जा सकता है । इसी प्रकार निम्बार्क और माध्वाचार्य के संप्रदायों का उत्तर भक्ति में सीमित प्रचार ओर प्रसार था । इसके अतिरिक्त चैतन्य जैसे अत्यन्त प्रभावशाली संप्रदाय का सम्बन्ध दक्षिण की परम्परा से नही जोड़ा जा सकता है ।[53]

यह सत्य है कि उपर्युक्त सम्प्रदायों का योगदान ऐतिहासिक महत्व अवश्य रखता है । किन्तु उसे शतप्रतिशत उत्तरदायी ठहराना उचित नहीं है ।

इसके अलावा यह भी उल्लेखनीय है कि जिन दिनों दक्षिण में इन चारों संप्रदायों केन्द्र प्रतिष्ठित हो रहे थे । उन दिनों उच्चस्तरीय विद्यार्जन और धार्मिक आस्था के केन्द्र उत्तर भारत में प्रतिष्ठित थे इन आचार्यों की काशी वृन्दावन आदि की यात्राएँ तथा श्रीमद्‌भागवत में वर्णित भक्ति के संवाद से उक्त बात प्रभावित होती है ।[54]

यह स्पष्ट होता है कि रामानन्द द्वारा प्रवर्तित और उसके पाश्चात संचालित भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि उत्तर और दक्षिण दोनों ही की परिस्थितियाँ व युगानुकूल सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना का ही फल है ।

उस काल में रामानन्द ने देश के समय एक ऐसे धर्म का स्वरूप प्रस्तुत किया जो कि न केवल उनकी आन्तरिक शक्ति का विकास ही करनेवाला वरन उस काल मे होनेवाले मुस्लिम अत्याचारों से उनकी रक्षा करनेवाला था । उन्होने उस समय केवल मानवता को सर्वोपरिता सिद्ध करने का प्रयास किया जातिगत भेदभावों को नही । यही संदेश उस काल की सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना को जागृत करने में सक्षम था । श्री रामानंद ने अपनी भक्ति पद्धति में सगुण निर्गुण का समन्वय करके एक नवीन स्वरूप प्रदान किया इसी भक्ति भावना में आगे चल कर संत कबीर गोस्वामी तुलसी दास जी की अलग अलग साधना पद्धति विकसित होकर चली है ।[55] भक्तिकाल का संत साहित्य एवं सगुण रामभक्ति शाखा का साहित्य रामानन्द से प्रभावित है वहां कृष्ण भक्तिशाखा के साहित्य पर वल्लभाचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है ।

भक्तिकालीन साहित्य का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट दिखाई देता है कि इसमें हिन्दु संस्कृतिक चेतना की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति हुई है । सर्वभौम सत्य के प्रतिपादन के लिए चिन्तन इस काल की प्रमुख विशेषता कहा जा सकता है । जहां तक धार्मिकता का प्रश्न है धार्मिक भावना व दार्शनिक चिन्तन दोनों ही इसके साहित्य मिलते हैं । इस काल में सभी प्रकार की ललित कलाओं का भी पूर्ण विकास हुआ जिनमें कला शिल्प साहित्य एवं संगीत का अत्यधिक विकास हुआ था इन सभी कला का विकास तभी हो सकता है । जब लोग इनके विकास की ओर अपनी अभिरूचि व्यक्त करें वैसे भारतीय समाज पर समय समय पर बाहरी तत्वोने आन्तरिक हस्तक्षेप के द्वारा परस्पर व्यवधान आते रहे हैं परन्तु उन्ही विपरीत परिस्थितियों में नवीन प्रकार से संगठित होकर भारतीयों ने अपनी सांस्कृतिक गरिमा को अक्षुण

रखा इसी विपरीत परिस्थितियों की वजह से कई बार हमारी संस्कृति पर दूसरी संस्कृतियों की अस्पष्ट झलक भी दिखाई देता है । भारतीय जीवन में समय समय पर विदेशी विजातिय तत्वों के आते रहने में कारण परिवर्तन होते रहे हैं परन्तु इन्ही मे से होकर ऐसी जीवन शक्ति का संचार भी होता रहा है कि हम डूबते-डूबते भी उबरते चल आये है निष्प्रभ या निस्तेज न होकर नवजीवन की अरूणिका से महिमा मण्डित रहे हैं । इन सभी में हमारी समन्वय साधना की प्रवृत्ति उजागर रही है जो ब्राह्मण युग (ई.पू. ८०० से ई.पू. ९००) तक से ही, उत्तर भारत में व्यक्त हो चुकी थी दक्षिण भारत में यह प्रवृत्ति बाद में उभरी । वैदिक देवी देवताओं के बाह्य विधानों से विद्ककर श्रमणसंस्कृति के उन्नायकों ने जीवन का नया पथ खोज निकालने का यत्न आरम्भ किया । परन्तु गुप्त सामान्य की स्थापना के अनन्तर दोनो ही क्षयमान हो गये मौर्य साम्राज्य के बिखराव के पश्चात ब्राह्मणवाद का नये ओज और तेज के साथ अभ्युत्थान हुआ ।[56] उस काल में गौ ब्राह्मणों की सुरक्षा की व्यवस्था भी की गई थी । उन दिनों वैष्णव धर्म को फलने फूलने का विशेष अवसर मिला साथ ही अन्य धार्मिक मान्यताओं को भी महत्व दिया गया । ब्राह्मणों ने श्रमणादि तत्वों से समन्वित एक नवीन स्वरूप की रचना की जिसे नव ब्राह्मणवाद नाम प्रदान किया गया यह प्राचीन ब्राह्मणवाद से कुछ भिन्न अवश्य था परन्तु वैदिक मान्यताओं के विपरीत न था । उसकाल की संस्कृति में धर्म का संरक्षण मुख्य ध्येय रह गया था तीर्थों को महत्व दिया जा रहा था, अवतारों की महत्ता को समझा जा रहा था, धर्म को उच्च वर्ग की धरोहर समझने के बजाय उसका जन सामान्य के अनुसार सर्वसुलभ स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा था क्योंकि धर्म ही वह कड़ी है जो मनुष्य को ईश्वर के निकट पहुंचने देती है । ईश्वर आराधना को सहज सरल बनाने से जन सामान्य का झुकाव धर्म की ओर होने लगा था अतः उन्हें भी लगने लगा था कि एक सामान्य मनुष्य की अपने श्रेष्ठ कर्मों के कारण ईश्वर खत्म हो सकता है चाहे वहां किसी भी जाति या समुदाय का क्यों न हो ईश्वर की प्राप्ति सभी के लिएं सहज हो चुकी थी ।

दूसरी ओर भक्तिकालीन साहित्य मं आत्मा की अमरता तथा सर्वव्यापकता भी दिखाई पड़ती है ।

इन्ही उपरोक्त बातों को देखते हुए भारतीय संस्कृति किसका कि मध्यकालीन भक्तिपरक साहित्य में अधिकाधिक विकास हुआ है सदैव गौरवान्वित रही है । अकबर युग की उच्च स्तरीय संस्कृति मर्यादावादी और आस्था प्राण कही जासकती है और उसमें लौकिक पारलौकिक तथा भौतिक आध्यात्मिक द्वन्द्वों का परिहार हो जाता है ।[57]

तुलसीदास जी उसी मध्यकाल की उपज थे । उन्होंने अपंने साहित्य मे समकालीन परिस्थितियों को देंख परखकर आत्मसात किया व उन्ही कर ध्यान रखते राम चरित के माध्यम से प्रस्तुत किया उस काल में महाराजा प्रताप के निर्वासित जीवन से परिचित थे परन्तु उनके अपार साहस एवं आत्म विश्वास से भी अपरिचित न थे इसी लिए उन्होंने राम चन्द्रजी को अपना माध्यम बताते हुए राम चरित मानस में निर्वासित राम की असुरों पर विजय बताते हुए उस भारतीय संस्कृति को प्रस्तुत किया जिसमें त्याग व तपस्या के साथ साथ आगामी पीढ़ियों के लिए सांस्कृतिक चेतना व जागृति का भी समावेश हुआ है ।

भक्तिकाल का साहित्य भारतीय सांस्कृति भारतीय धर्म भारतीय चिन्तन और भारतीय आचार का निचोड़ है । इसमें हमे भारतीय संस्कृति का वह विराट संगम दिखाई देता है जिसमें भारत कर्म को सच्चे अर्थ में सांस्कृतिक तीर्थ बना दिया । मध्यकाल के साहित्य ने देश काल लिए दया क्षमा अहिंसा और मैत्री के महामंत्रों को जनसामान्य तक पहुँचाया । उस आध्यात्मिकता को उभारा है जो भारतीय संस्कृति के पांच हजार वर्षों के भीतर हीरक सूत्र की तरह दौड़ रही है । मध्यकाल भारत वर्ष- की आध्यात्मिक संस्कृति के पूर्ण विकास का काल था इस काल का भक्ति परक साहित्य भारतीय संस्कृति का दर्पण है ।

भारत में प्राचीन काल से वैष्णव सम्प्रधाय का प्रमुखत्व रहा

है । विष्णु के 24 अवतारों में से रामकृष्ण का प्रभाव समस्त राष्ट्र पर सर्वाधिक कहा जा सकता है । ये दोनों सम्पूर्ण भारत वर्ण के प्राणवायु कहे जा सकते हैं । अयोध्या हरिद्वार मथुरा वृन्दावन जगन्नाथपुरी रंगनाथ द्वारिका बद्रीनाथ आदि वैष्णवतीर्थ समस्त भक्त मे फैले हुए हैं ।

इन दोनों से सम्बन्धित त्यौहारों रामनवमी, दशहरा, दीपावली, जन्माष्टमी सारे देश में बडा धूमधाम से मनाये जाते हैं । इन सारी लोकप्रियता का जनसामान्य पर असर होना ही था इन्हीं भगवानों के नामों पर भी लोक अपने बच्चों के नाम रखने लगे । ये दोनों हिन्दु जातियों के लिए अत्यधिक लोकप्रिय हो गये इनकी इस लोकप्रियता का असर स्वाभाविक रूप से इस काल के साहित्य पर भी पड़ना ही था । क्योंकि साहित्य समाज की प्रत्येक प्रक्रिया का प्रतिबिम्ब होता है कवि अपने आसपास देखकर ही रचना करता है इससे सांस्कृतिक समन्वय की प्रक्रिया में सहायता मिलती है यदि मध्यकाल में परिस्थिति सदैव शान्त व सौहाद्रपूर्ण रहती तो कवियों का साहित्य सृजन किसी अन्य प्रकार का होता परन्तु विपरीत परिस्थितियों में जहां धर्म का नाश होनेवाला हो ऐसी अवस्था में साहित्य सृजन में कवियों को ऐसे निराशापूर्ण वातावरण में कवियों ने राम व कृष्ण जैसे वीर पराक्रमी महापुरुषों का आश्रय लिया जिन्होंने रावण व कंस जैसे आततायियों को मारने के कारण धर्मरक्षार्थ अपना स्थान बना चुके थे । हिन्दु संतो ने कृष्ण व राम दोनों की पूजा की जो कि सगुण काव्य में राम व कृष्ण दो विभिन्न शाखाओं में बट गया इन्ही का आश्रय लेकर हिन्दु धर्म अपनी सांस्कृतिक धरोहरों की सुरक्षा कर सका रामकाव्य व कृष्ण काव्य दोनो ही में अलग-अलग प्रकार से ईश्वर की उपासना की गई है ।

राम काव्य में राम को मर्यादा पुरूषोत्तम के स्वरूप मे देखा गया जहां राम आदर्श पुत्र, पति, भाई, राजा व सबसे अधिक क्षत्रिय के रूप में चित्रित किये गये जहां पर उनका उद्देश्य भारतीय संस्कृतिकी रक्षा करना नारी के सतित्व की रक्षा करना व प्रजा का पुत्रवत पालन

करना था । राम काव्य में तुलसीदास जी की रामचरित मानस सभी दृष्टियों से अप्रतिम ग्रन्थ माना जाता है । आज भी उसके समान दूसरा ग्रन्थ रामकाव्य में नही कहा जा सकता है । जिसकी लोकप्रियता इतनी अधिक हो । जिसमें कविता और कल्पना, प्रबन्ध काव्य रचना व भाव गौरव सभी है । कृष्ण काव्य में मुख्य रूप में सूरदास जी माने जाते हैं जिन्होने कृष्ण को लोकरंजक रूप मे चित्रित किया है उनकी नज़र में तो वह एक भोला भाला बालक है जो कि गोपियों को आकृष्ट करता है केवल वही एक पुरुष है बाकी सब गोपी भाव से उनकी आराधना करते हैं । यहां सख्यभाव की प्रधानता दिखाई देती है । मध्वाचार्य निम्बार्क सूरदास कुम्भनदास परमानन्द कृष्णदास छीतस्वामी नन्ददास् आदि इसी शाखा के कवि हैं । मीराबाई उसखान आदि भी इसी शाखा के माने जाते हैं ।

रामाश्रयी साहित्य व राजनीति एवं संस्कृति

भारत वर्ष का प्राचीनतम साहित्य वेदों से ही आरम्भ होताहै और इन्ही वेदों से रामकथा विद्यमान है ऐसा तुलसीदास जी ने स्पष्ट कहा है -

बंदउ चारिउबेद, भवबारिधि बोहित सरिस
जिन्हहि न सपने हुखेद, बरनत रघुबर बिसवजस ॥[1]

इसके अलावा मंत्र रामायण नामक ग्रन्थ प. नीलकण्ठ ने लगभग चार सो वर्ष पूर्व लिखाएँ इसमें भी इन्होने ऋग्वेद के मंत्रों से रामायण कथा निकाली है । सायण आदि भाष्यों में यह अर्थ उपलब्ध नहीं है । इसका कारण है कि इन भाष्यकारों ने मन्त्रों का भाष्य यज्ञ परक किया है । वेदों के अनेक अर्थ होते हैं । अतः इतिहास परक नीलकण्ठ का भाष्य भी उपयुक्त है ।[2]

वाल्मीकि का उद्घोष है कि जब वेदवेद ब्रह्म दशरथ के पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुए तववेद भी वाल्मीकि के रामायण के रूप में अवतीर्ण हुआ -

बेदवेधे परे पुंसि जाते दशरथात्मणें
वेदः प्राचे तसादासीतसाक्षद्रामायणात्मना ॥

स्वयं वेदने कहा है कि रामकथा सम्बन्धी ऋचाओं के पाठ से मुक्ति मिलती है -[3]

इस प्रकार यह तो स्पष्ट हो जाता है कि रामकथा वेदवर्णित है । यह ध्रुवसत्य है कि रामकथा और रामायण दोनो असीम है और तुलसीदास जी ने इसे रामचरित मानस में स्पष्ट कहा भी है - रामचरित अति अमित मुनीसा[4] व रामायन सत कोटि ऊयारा ।[5] रामकथा की यह अनन्तता उचित ही है क्योंकि रामायण वेद का ही अवतार है जब वेद अनन्त है तो उनकी कथा और उनका वर्णन करने वाले

रामायणों को भी अनन्तता होनी ही चाहिए, रामकथा अलग अलग स्थानों पर अलग-अलग स्वरूप में दिखाई देती है कई बार एक ही वस्तु की पुनरावृत्ति जहाँ जाये इसीलिए भी उसमें परिवर्तन किये जाते हैं । इस राम अवतार मे जो कि वाल्मीकि रामायण में वर्णित है उसी कथा को आधार मानकर कितने ही विद्वानों नें रामायणों की रचना की है आरम्भ मे हम उन सभी का उल्लेख एक संक्षिप्त परिचय कर चुके हैं । अब हमारा उद्देश्य उन सभी रामाश्रयी साहित्य में वर्णित राजनीति एवं संस्कृति का परिचय देना है ।

तुलसी दास जिस मध्यकाल के द्रष्टा थे उसका अवलोकन हम पिछले अध्याय मे कर चुके हैं । इस मध्यकाल को एक ही स्पष्ट तरीके से समझ लेना सरल नही है क्योंकि उसमें एक ही समय पर कई बातों का अलग अलग स्थान पर अलग अलग ढंग से पाया जाता है एक ओर शाहशांह के इर्दगिर्द जुढ़नेवाला सामान्ती समाज है जिसमें प्रान्तपति अथवा सूबेदार जागीरदार, जमींदार, राज्य के सर्वोच्च अधिकारी अमीर उमरा सभासद आदि है । दूसरी ओर खेती में जुटा हुआ कृषक समाज व्यापार में उलझा वणिक वर्ग, धर्म की कर्मकाण्डी व्यवस्था के नियामक पुरोहित तथा अन्य पेशों में लगे हुए सामान्यजन अक्बर जहांगीर के समय को लेकर कई बार किसी स्वर्णकाल की कल्पना की जाती रही है पर यह गलत साक्षात्कार है । क्योंकि प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि राज वैभव जिस विशिष्ट समाज का प्रतीक है वह विशिष्ट समाज कितना होता है सारी जनता तो गरीब ही होती है । साम्राज्य कहने को बड़ी दूरदूर तक फैला हुआ था पर उसकी आन्तरिक व्यवस्था कितनी अधिक खोखली थी । जन सामान्य तो दुःखी दुःखी ही था हिन्दु जनता आतंक के माहौल मं जी रही थी । धर्म की कट्टरता बहुत अधिक थी विलासिता मे चूर बड़े-बड़े मनसबदार केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करते थे उन्हे गरीब जनता जो मुख्यतः हिन्दु थी कि कुछ भी परवाह नही थी । उनमें आपसी वैमनस्य व पारस्परिक ईर्ष्या अत्यधिक पनप चुके थे निजी स्वार्थों के लिए किसी भी सम्बन्धी की हत्या करवा देना आम बातथी । अवसर पुत्र अपने

ही पिता की हत्या करवा करके राजगद्दी हांसिल कर लेता था । सचरित्र होने का सवाल ही नही उठता था नारी को केवल अबला व भोग्या का स्थान दे दिया गया था । राज धन का अपव्यय होता था व राजघरानें षडयन्त्रों का मुख्य स्थान बन गये थे भाई भतिजावाद पनप चुका था । अनेकों विवाहों की वजह से पारस्परिक टकरावों में आधुनिकता आ गयी थी । प्रो.नूरूलहसन ने उपरोक्त स्थिति को इस प्रकार प्रदर्शित किया है - केंद्रिय सत्ता के बावजूद मुगलकालीन कृषिभूमि व्यवस्था में ऐसे अन्तर्विरोध थे कि संघर्ष अनिवार्य थे और शाही मुगल व्यवस्था के भीतर समाधान संभवं न था दो शताब्दियों तक उसमें स्थिरता बनी रही पर अधिकाधिक संघर्ष उपजते गये भूमि पर नियंत्रण रखनेवाली विभिन्न वर्गों की आपसी टकराहट हुई -

इसके अलावा -

सलीम की बगावत को एक पुत्र का अपने यशस्वी पिता के विरूद्ध विद्रोह के रूप में हीन देखना चाहिए बल्कि एक महत्वाकांक्षी प्राप्तपति की लालसा से जोड़ना चाहिए जिसकी पूर्ति के लिए उसन अबुलफजल की हत्या करवा दी थी स्वयं जहांगीर के शब्दों में -

मुझे विश्वास हो गया था कि जिन लोगों ने बाप बेटे के बीच मनमुटाव पैदा करवा दिया था उनमें अबुलफजल भी एक है जब एक वह दक्षिण की विजय से लौट रहा था तब नरसिंह देव से उसकी हत्या करवा दी ।

इस हाल को प्रो. इरफान हबीब ने भी इन शब्दों में व्यक्त किया है । मसबदारी जागीरदारी पर आधारित पर आधारित मुगल साम्राज्य में कठोर सत्ता के कारण स्वामिभक्ति प्रदर्शित करने की विवशता थी पर एक दुर्बल क्षण पाकर यह विशिष्ट वर्ग अपनी महत्वकांक्षा की पूर्ति में चूकता नहीं था और इसी के द्वारा कृषक समाज का निर्मम शोषण भी होता था यहां तक कि किसान अपने बीवी बच्चों और जानवरों को बेचने के लिए विवश थे ।

यह सच है कि उस काल में कला व स्थापत्य रचना की ऊंचाईयों सामन्तवादी व्यवस्था मे स्वाभाविक रूप से देखी पाई जाती है क्योंकि शासक इनसे अपनी तुष्टि पाते हैं । पर जहां तक सामान्य जन की ज़िन्दगी का प्रश्न है वह सुखी कदापि नही कही जा सकती ।

दूसरी ओर राजस्व व्यवस्था भी सुखकर नही कही जा सकती थी यह सच था कि राजकोष भरने लगा था परन्तु गरीब कृषक समाज दुर्दशाभोग रहा था जनता गरीब ही थी, कृषक भी गरीब था परन्तु बिचोलियों को धनकी प्राप्ति हो रही थी । इस प्रकार इन सभी बातों से यह स्पष्ट हो गया है कि मध्यकालीन समाज अपन ही जाल मं उलझा हुआ, अन्तर्विरोधों में घिरा हुआ और चारों ओर केवल जनता का शोषण हो रहा था ।

यह ध्रुव सत्य है कवि या साहित्यकार शुन्य में रचना नही करता है वह अपने आसपास के वातावरण की उपज होता है वह भावुक होता है व जनमानस की आवाज उसके हृदय के तारों को झनझनाती रहती है । तुलसीदासजी भी कवि थे व वे युगदृष्टा थे - अतः मध्यकालीन जीवन-यथार्थ उनकी रचनाओं मं प्रवेश न पाए यह संभव नहीं ।[१] इन्होंने अपने रामचरित मानस में उपरोक्त परिस्थिति का चित्रण किया है उसे अपने काव्य का विषय बनाया है ।

हिन्दु सामन्तवाद इस्लाम आगमन के पूर्व अपने एक वृत्त पूरा क लेता है जब एक नये धर्म से उसकी टकराहट होती है तब काफी समय तक वह आत्म केंद्रित होकर समय के यथार्थ से पलायन कर जाता है । इसीलिए सत्लनत काल में धर्म का कर्मकाण्ड मिथ्यावाद इस सीमा तक बढ जाता है कि संतकाव्य को उस पर पूरी शक्ति से आक्रमण करना पडता है । कर्म विभाजन पर आधारित वर्ण व्यवस्था यहां तक विकृत हो जाती है कि पंडित पुरोहित समाज के नियामक बनते हैं और क्षत्रिय शासक को भी उन्हे स्वीकारना पड़ता है । उस काल मे बहुदेववाद व निर्मम जातिव्यवस्था को कुव्यवस्था पनप चुकी थी ।

ऐसे में तुलसीदास जी ने अपने समय व समाज का सम्पूर्ण यथार्थ को संकेतों के माध्यम में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । वेअपने समय से खुश नहीं थे उन्हें उस काल की परिस्थितियों को कलिकाल के रूप में चित्रित किया है या फिर इस काल के शासन को लंका के रूप में चित्रित किया है । उन्होने अपने पात्रों के जीवन को फूलों की बगिया में नही घड़ा है बल्कि उन्हे इस काल की वास्तविकता से परिचित करवाया है।

उन्होने मध्यकाल के चित्रण को यथार्थ के रूप में स्वीकार करते हुए चित्रित किया है - वैसे तो भागवत में भी कलियुग का चित्रण हुआ है - घोर कलियुग आने पर धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया आयु, बल स्मृति का लोप होता जायेगा ।[10] तुलसी दास जीने प्रत्यक्ष रूप में इस स्थिति को देखा व परखा था । जो धनी होगा वही कुलीन होगा जो शक्तिमान होगा वह धर्म और न्याय को अपने पक्ष मं कर लेगा छल कपटी व्यवहारिक समझ जायेंगे । ब्राह्मण ने उस पहचाने जायेंगे पण्डित वाचालता से जाना जायेगा । साधु देंभी व पाखण्डी होंगे यहां तक की धान्य केपौधे भी लघुकाय हो जायेंगे। अनावृष्टि होगी एसे में धर्म की रक्षा करने के लिए अवतार लेंगे।

तुलसीदास जीने इसे केवल पौराणिक कथा के रूप में ही नही पढ़ा परन्तु स्पष्ट महसूस किया था । क्योंकि उनके जीवनकाल में भी उत्तर भारत में कई बार भीषण अकाल पड़ा था और महामारी भी आई थी । अकाल के समय तो इस हद तक दुर्भित था कि पैसा लेकर भी घूमने पर अनाज का दर्शन मात्र नहीं होता था । ऐसे में लोग नरभक्षी हो गये थे लोग अकेले दुकेले निकलने मे डरने लगे थे । उत्तरकाण्ड में इन्ही अकालों का वर्णन तुलसीदास जी ने काक भुशुण्डि जी के माध्यम से करवाया है -

कलिबारहिबार दुकाल परै ।
बिनु अन्न दुःखी सब लोग मेरे ॥

यही नही उन्हें भी उज्जयनी जाना पड़ा था । ऐसी अवस्था मे राजनीतिक असमानता व असंगठित समाज ही होगा ।

गोस्वामी तुलसीदास जीने प्राचीन रामकाव्यों का अध्ययन करके उन्ही सभी के आधार पर अपने रामाश्रयी साहित्य की रचना की उन्होने सर्वप्रथम वाल्मीकि रामायण को व अद्भुत रामायण को अपने आधारग्रन्थ के रूप मं लिया है ।

उन्होने स्वयं ही लिखा है-

नानापुराण निगमागमसम्मतयद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्योऽपि । स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषा निबन्ध मतिमंजुल मातनोति ।।

पालि व प्राकृत एवं अपभ्रन्श साहित्य मे राम कथा की रचना हुई है ।

इस प्रकार उन्हे रामाश्रयी साहित्य के रूप में -

पुराण :- भागवतपुराण, पद्मपुराण, स्कन्दपुराण, शिव पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण (अध्यात्म रामायण) ब्रह्मवैवर्त पुराण मार्कण्ड्य पुराण तथा नृसिंहपुराण आदि ।

निगम :- (वैदिक वाङ्मय) ऋग्वद, यजुर्वेद, अथर्ववेद वैत्तिरीय उपनिषद श्वेताश्वर उपनिषद तथा शाकटायन उपनिषद ।

आगम :- शैवशीवत वैष्णवशास्त्र तथा दर्शन नारद पंचरात्र अहिर्बुधन्य संहिता ।

रामायम :- तात्पर्य रामायण से है रामयण निगदितम - वाल्मिकी ।

क्वचिदन्योअपि - महाभारत, वेद व्यास को प्रणाम किया है महाकाव्य । महाभारत, रघुवंश, जानकीहरण महिकाव्य । नाटक - प्रसन्न राघव, हनुमन्नाटक, नीतिग्रन्थ पंचतंन्त्र, हितोपदेश, चाणक्यनीति, भर्तुहरिशतक

योगवशिष्ठ । गीता - श्रीमदभागवदगीता, गुरूगीता, पाण्डवगीता, इसके अलावा मानस पर कुछ दोओ ग्रन्थों का प्रभाव परिलक्षित होता है। इन ग्रन्थों के अलावा संस्कृत नाटकों बाद स्वयं तुलसीदास जी ने विभिन्न शैलियों मं रामाश्रित साहित्य की रचना की है ।[11]

(१) रामलीलानहछु (२) वैराग्य संदीपनी (३) रामाज्ञा प्रश्न (४)पार्वती मंगल (५) जानकी मंगल (६) दोहावली (७) हनुमान बाहुक (८) हनुमान चालीसा भी रामाश्रित तुलसी साहित्य है ।

(१) विद्यापति व सूरदास की शैली में गीतावली मे राम कथा का वर्णन किया है ।

(२) भाटो की कवित सवैया पद्धति में - राम के सम्पूर्ण चरित्र को कवितावली में प्रस्तुत किया है ।

(३) वरवाशैली में रहीम की प्रचलित शैली में वरवैरामायण में रामकथा का वर्णन किया है ।

(४) दोहा चौपाई की प्रबन्ध शैली में रामचरित मानस की रचना की ।[12]

इसके अलावा रामकथा को कालिदास का रघुवंश भवभूति आदि संस्कृत के अनेकों महान कवियों ने भी अपने साहित्य मे स्थान दियां है, प्रवरसेन रचित सेतुबन्ध, कुमारदास का जानकीहरण, क्षेमेद्र का रामायण मंजरी आदि महत्वपूर्ण है, भासकृत प्रतिभा, भवभूति की उत्तरराम चरित, अनंगहर्ष कृत उदात्तराघव, राजशेखर कृति बालरामायण तथा जयदेवकृत प्रसन्नराघव आदि संस्कृत के श्रेष्ठ नाटकों ने राम के ऐश्वर्य शौर्य तथा श्रृंगार से युक्त रूप के विकास मं महत्वपूर्ण योगदान दिया है । यहां इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि राम का अवतारी रूप उसके पूर्व ही निर्मित हो चुका था किन्तु इन कवियों ने उसका संकेत मात्र ही दिया है ।[13] वाल्मीकि के पश्चात अन्य रामायणों की भी रचना की गई -

(१) महर्षि नारद - कृत	संस्कृत रामायण
(२) महर्षि अगस्त - कृत	अगस्त रामायण
(३) महर्षि लोमेश - कृत	लोमेश रामायण
(४) महर्षि आत्रि - कृत	सोपद्य रामायण
(५) महर्षि सुतीक्ष्ण - कृत	मञ्जुल रामायण
(६) शरभंग - कृत	सोहार्द रामायण
(७)	शोर्य रामायण
(८)	चान्द्र रामायण, सुब्रह्म रामायण
(९)	मन्ढ रामायण
(१०)	रामायण मणि रत्नम
(११)	सुवर्चस रामायण
(१२)	श्रावण रामायण
(१४)	दुरन्न रामायण
(१५)	देव रामायण
(१६)	रामायण महामाला
(१७)	अध्यात्म रामायण, अद्‌भुत रामायण

इनके अलावा बौद्धों ने उन्हें बौद्ध अवतार व जैनियों ने उन्हे त्रिपाठी महापुरुषों में से एक माना है । वैसे दक्षिण भारत की प्रमुख भाषाओं तामिल तेलुगु, कन्नड़ आदि मे भी रामकथा को स्थानप्राप्त हुआ, आलवार भक्तों की रामायण को भी महत्वपूर्ण माना जाता है ।

श्रीरंगनाथ रामायण - उड़िया विलंकारामायण, ऊड़िया जगमोहन रामायण, काश्मीरी रामायण, प्रेमरामायण, कन्नड़सोरवे रामायण, अरूनिया राम साहित्य, आदिवासियो में प्रचलित रामकथाएँ जो जनपरम्परा मे रामायण नेपाली रामायण, विचित्र रामायण, कम्बरामायण, रामस्नेहि सम्प्रदाय की रामभंक्ति साहित्य, मराठी संतों का रामसाहित्य पंजाबी, हरियाणवी तथा हिमाचली में राम साहित्य, बंगाली मं कृतिवासी कृतरामायण गोविन्द रामायण, हरियाणा के लोकगीतो में रामकथा दिखाई देती है, हिमाचली हरण लोकनाट्य, हरणात्र लोकनाट्य बरलाज में भी रामकथा दिखाई देती है, इसके अलावा राजस्थान के भक्ति साहित्य मे राम भवि के

दर्शन होते हैं, बुन्देली साहित्य मे भी रामकथा मिलती है । मराठी साहित्य में, दक्षिण पूर्वी एशिया में रूस में स्व. अलैवसरू बारान्निकोव सोवियत संघ के पहले हिन्दी प्रचारक थे उन्होंने सर्वप्रथम रूसी भाषा मे रामचरितमानस - राम के शार्यमय कार्यों का सागर से अनुवाद किया था उन्होंने अपने अनुवाद की भूमिका में लिखा था कि -

रामचरित मानस समाज के नैतिक मूल्यों की स्थापन करनेवाला महान ग्रन्थ है । यह ग्रन्थ भारतीय दर्शन, सौन्दर्य शास्त्र और नैतिकता का आईना है । रामचरित मानस उस साहित्यिक स्मारक की तरह है जो दूसरों की भलाई के लिए मानव को सच्चा मानव बनने की युग-युगों तक प्रेरणा देने की क्षमता रहता है । इसके अलावा विश्व की अन्य भाषा में भी रामाश्रयी साहित्य प्राप्त होता है -

	ग्रन्थ का नाम	लेखक	रचनाकाल	देश
(1)	लिऊतऊत्व	किग	२५१ ई	चीन
(2)	त्वं पाओं	त्वांगकिग	४७२ ई	चीन
(3)	लंकासिहा	अज्ञात	७वी शती	चीन
(4)	खोतानी रामायण	अज्ञात	९वी	पूवीतुर्किस्तान
(5)	तिब्बती रामायण	अज्ञात	३	तिब्बत
(6)	भगोलिया की रामकथा	अज्ञात	१०वी	मंगोलिया
(7)	जापान की रामकथा	होबासु	१२वी	जापान
(8)	जापान की रामकथा	साम्बो	१०वी	,,
(9)	हरिश्रय	हरिश्रय कवि	८वी	इंडोनेशिया
(10)	रामपुराण	अज्ञात	१९वी	,,
(11)	अर्जुनविजय	,,	१९वी	,,
(12)	रामविजय	,,	समय अज्ञात	,,
(13)	वीरतंत्र	,,	,,	,,
(14)	कपिपर्व	,,	,,	,,
(15)	चरित रामायण	,,	,,	,,
(16)	ककविन रामायण	कवि ककविन	,,	,,

(17) जावी रामायण	अज्ञात	,,	,,
(18) मिसासुर रामायण	,,	,,	,,
(19) केचक रामायण	,,	,,	,,
(20) रामकियेन	,,	,,	थाइलेन्ड
(21) काल के फालक	,,	,,	लाओस
(22) पोम्मचाक	,,	,,	,,
(23) हकायत श्रीराम	,,	१३ शती	मलेशिया
(24) हकायत महाराजा रावण	,,	समय अज्ञात	,,
(25) राम कीर्ति	,,	,,	क़म्बाकिया
(26) जानकी हरण्	लंकापति कुमारदास	कालीदास के समकालीन	श्रीलंका
(27) महरदिया भावना	अज्ञात	१३ शती	फिलीपीन्स
(28) रामवस्तु	,,	१७ शती	बर्मा
(29) महाराम	,,	१८ शती	,,
(30) राम तीन्मर्या	,,	१९०४	,,
(31) रामताज्यी	,,	१७७५	,,
(32) रामयग्रान	,,	१७८४	,,
(33) अलोगरामताज्यी	,,	१९०५	,,
(34) थिरीराम	,,	१८वी शती	,,
(35) वान्तवराम	,,	१८८०	,,
(36) पौन्तवरामलखन	,,	१९१०	,,

उपरोक्त सारे ग्रन्थों की सूची में यह स्पष्ट होता है कि विदेशो में भी रामभक्तिपरक या रामाश्रित साहित्य का सर्जन होता रहा है।

यावत स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्चमहीतले तावद् रामायण कथा लोकेशु प्रचरिप्यति -

जब तक धरती पर नदियाँ और पहाड़ रहेंगे तब तक इस लोक में रामकथा का प्रचार होता रहेगा ।

इनके अलावा रामायणों में मानस पूर्ववर्ती व मानस परवर्ती ग्रन्थो को निम्नांकित क्रम में रखा गया है -

	रचना	रचयिता	रचनाकाल
(1)	रामचरित रामायण	भूपति	१३४२ वि.
(2)	रामायंण कथा	गो. विष्णुदास	१४९२
(3)	रावण मदोदरी संवाद	मुनिलावष्यकृत	
		जैन रामकथा	१५०० वि.
(4)	भरत विलाब	ईश्वरदास	१५५५ वि.
(5)	अंगद पैण	''	''
(6)	रामं सीता चरित्र	बालचन्द्र जैन	
(7)	हनुमान चरित्र	सुरदास	१६१६
(8)	हनुमान चरित्र	ब्रह्मरायतीजन	१६१६
(9)	हनुमच्चारित्र	रायमल पाण्डे	१६१६
(10)	रामअवतारलीला	मलूकदास	कवि का जन्म १६३१ व मृत्यु १७३९ मानी गई है
(11)	रामलीलानहछू	गो. तुलसीदास	१६४० वि.
(12)	रामप्रकाश	रामायण-मुनिलाल	१६४२ वि.
(13)	गुणराम रासों	माधोदास चारण	१६७५ वि.
(14)	जानकी मंगल	गोस्वामी तुलसीदास	१६४३ वि.
(15)	रामंचन्द्रिका	केशवदास	१६५८ वि.
(16)	रामायण	कपूरचन्द	१७०० वि.
(17)	हनुमानदूत	पुरूषोत्तम	१७०१ वि.
(18)	सीता चरित्र	राइचन्द	१७१३
(19)	अंगदपर्व	लालदास	
(20)	अवधविलास	लालदास	१७३२
(21)	अवतारचरित्र	बालहट नरसिंहदास	१७३३
(22)	रामाश्वमेघ	नारायणदास (उम्र)	१७३९
(23)	गोविंदरामायण	गुरूगोविन्दसिंह	१७५५
(24)	अवध सागर	जानकी रसिक शरण	१७६०
(25)	सीतायन	रामप्रियाशरण	१७६०
(26)	रघुवंशदीपक	सहजराम	स. १७८०
(27)	रामायण	भवंतरायखींजी	१७८४

(28) रामचरित	रामाधीन	१८वी शती
(29) रामायण	चन्दकवि	१८३५ के आसपास
(30) रामस्वयंवर	राजारघुराजासिंह	१९३४

इन सभी रचनाओं मे श्रीराम के उसी रूप को प्रतिष्ठित जो कि प्राचीन काल का वैदिक स्वरूप है ।

रामाश्रयी सभी ग्रन्थों मे श्रीराम को एक आदर्श स्वरूप के रूप में प्रस्तुत किया गया है जहां पर श्रीराम एक ऐसे राजनेता के रूप में दिखाई देते हैं जो जनमानस के हृदय सम्राट भी है व राज्य के राजा भी है जो हर व्यक्ति के स्नेही भी है जो आदर्श पति पुत्र, भाई व सखा व राजा भी है जहां पर निर्धन व्यक्ति भी राजा तक जा सकता था उसे किसी भी प्रकार का बन्धन नही दिखाई देता था जहां पर सबके लिए समभाव था ।

तुलसीदास जी ने अपनी रामचरित मानस कवितावली व अन्य सभी रामभक्तिपरक साहित्य में उस काल की राजनीति को प्रस्तुत किया है ।

तुलसी साहित्य का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि तुलसी दासजी भविष्य दृष्टा थे क्योंकि मध्ययुग के ठीक स्वर्णयुग के बीच तुलसी जब कलियुग की घोषणा करते हैं और भाषा एवं छन्द की सारी शक्तियों से उसको चुनौती देते हैं तो आश्चर्य होता है।[16] क्या अकबर जहांगीरकाल सचमुच स्वर्ण युग था ? इस्लामी इतिहासकारों और मध्ययुग की संस्कृति के अध्येताओं ने जो कहा है वह क्या एकदम असत्य है ? क्या तुलसी की दृष्टि केवल संत दृष्टि हैया उसमें युग बोध का प्रतिफलन भी है ? निश्चय ही तुलसीदास जीने तथाकथित स्वर्ण युग को उस रूप में नहीं देखा है । विनयपत्रिका के पदों में उन्होने विषम वस्तु स्थिति का चित्रण करते हुए अन्त में रामराज्य की सुखद कल्पना की है ।[17]

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी दासजी किसी भी प्रकार की उपरी चकाचोन्ध से प्रभावित होने व्यक्ति नही थे वे अक्बरी स्वर्णकाल को एक स्वर्ण मुलम्मे की तरह से ही समझ रहे थे जिसके पीछे जनता की करूण गाथा थी, दुर्भिक्ष था अराजकता थी आपसी वैमनस्य था, सत्ता की लोलुपता था चरित्र का पतन था सम्बन्धों की कटुआहट थी पारस्परिक ईर्षा थी एक दूसरे को पीछे ढकेलने की प्रवृत्ति थी ।

मुगल सम्राट किसी भी प्रकार अपना राज्य स्थापित करना चाहते थे और देशी राजे अपना वैभवविलास सुरक्षित रखना चाहत थे इसीलिए वे आपस मे बात के पीछे युद्ध कर बैठते थे और अपने प्रिय के प्रिय सम्बन्धी को भी तलवार के घाट उतारते हुए संकोच नहीं कतें थे । प्रजापालन से उनका कोई सम्बन्ध था । अकबर ने इस स्थिति मे बहुत कुछ परिवर्तन किया परन्तु वह राजनीति में नैतिकता का समावेश नही कर पाया हर हाल में प्रजा का ही शोषण हो रहा था । तभी तो गोस्वामी जीने अपने ग्रन्थों में इस स्थिति को इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

> जासुराज प्रियप्रजा दुखारी सोनृपअवसनरक अधिकारी ।[18]
> नृपपाप परायण धर्मनही, करिदण्ड विडवप्रजा नितही ॥

इसी स्थिति ने उनके भावुक हृदय पर अपनी अमिट छाया छोडी व उन्होने रामकथा की रचना की उन्होंने भरत जैसे भाई का आदर्श प्रस्तुत करके आपस में लड़नेवाले हिन्दु राजाओं को आपसी सद्भाव के लिए प्रेरित किया उन्हे राम व भरत की भांति व्यवहार करने की प्रेरणा दी । उन्होंने अपने सभी ग्रन्थों में रामचरित मानस कवितावली गीतावली तथा दोहावली में कलियुग के रूप में राज्य व समाज का जो वर्णन किया वह उस समय की दुर्दशा का वर्णन मात्र है । भक्तिकाल का राजनीतिक एवं सामाज़िक वातावरण भी राम के लोकरक्षक रूप की अभिव्यक्ति के सर्वाधिक अनुकूल था, विदेशी शक्तियों से आक्रान्त सामाजिक दृष्टि से वैष्णव पीडित धार्मिक धरातल पर सिद्धों एवं तांत्रिकों

के विविध मत मतान्तरों से ग्रस्त नैराश्य मुक्त हिन्दु जनता को राम के असुर संहार शरणागत प्रतिपालक अलौकिक रूप ने मधुमय सम्बल प्रदान किया ।[19]

तुलसीदास जी अन्य रामाश्रयी कवियो ने रामकथा को अपनी रचना का माध्यम बनाते समय उपरोक्त विषम परिस्थितियों का पूर्णतः अध्ययन करने के पश्चात् ही कलम उठाई होगी वैसे रामकथा और भारतीय संस्कृति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । एक के विकास को अन्य के विकास से पृथक नहीं किया जा सकता है । रामकथा भारत वर्ष की सांस्कृतिक विचारधारा के विकास का प्रतिरूप है । धर्म के उपर धर्म की विजय के मध्यनारायण की दिव्य कला के प्रति भारतीय मनीषा ने जो आत्मनिवेदन किया वही वस्तुतः रामकथा के रूप में मूर्तिमय हो गया ।[20]

इसमे उन सभी ने सत्य को विजयी स्वरूप प्रदान किया है व असत्य को पराजित होते हुए बताया है । इन सभी लेखकों ने रामाश्रयी साहित्य में श्रीराम को एक ऐसे आदर्श पुरूष के रूप में प्रस्तुत किया है जिसका उद्देश्य जन कल्याण का ही था । वे सदैव अपने कर्तव्यों का पालन करने मे कभी नहीं चुके हैं - राम कथा के प्रथम सोपान में राम अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वे अपराजित रहे हैं सर्वप्रथम जब वाल्मिकी ने रामकथा की रचना की थी तो उन्होने उन्हे एक आदर्श क्षत्रिय और वीर प्रतापी सम्राट के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत हुए हैं ।[21]

उनके बाद श्रीराम को विष्णु के अवतार के रूप मं प्रतिष्ठित किया गया यह उनकी रामकथा का द्वितिय सोपान था इसमे राम को विभिन्न रूपों मं प्रतिष्ठित किया गया इस समय राम के जीवन का अतिरंजित स्वरूप प्रस्तुत किया जाने लगा जो कि उसकाल के हिन्दु बौद्ध एवं जैन धर्मग्रन्थों में स्पष्ट दिखाई पड़ता है इसी काल में विदेशो में भी रामकथा का विस्तरण हुआ ।

रामकथा का तृतीय सोपान 13 शताब्दी मे आरम्भ होता है यह वह समय है जब दक्षिण भारत में भक्ति आन्दोलन प्रबल रूप धारण कर चुका था । संत नामदेव, रामानुज विष्णु स्वामी संत ज्ञानेश्वर मध्वाचार्य निम्बाकाचार्य आदि एक के बाद एक आचार्य भक्तिभावना से ओतप्रोत साहित्य का सृजन कर रहे थे । डॉ .बलदेवप्रसाद मिश्र ने लिखा है कि अब राम को विष्णु ही नही परब्रह्म का पूर्णावतार माने जाने लगा । रामभक्ति के प्रवर्तन के पश्चात् रामकथा का रूप आदर्शात्मक हो गया और वह भक्तवत्सल साक्षात भगवान राम की कथा बन गई ।

इसके बाद रामानन्दजी आदि का समय आ जाता है इन्हीं दिनो कबीर आदि संत कवि राम की निर्गुण भक्ति का प्रचार कर रहे थे। दूसरी ओर राजनैतिकपरिस्थितियां इतनी अधिक बिगड़ चुकी थी कि भगवान का भजन करने के सिवाय दूसरा कोई रास्ता भी नहीं दिखाई दे रहा था ।

ऐसे ही समय श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने ढंग से रामकथा को प्रस्तुत किया जो कि उनसे पहले व बाद की सभी रामायणों से कितने ही ढंग से भिन्न थी एक तो वह लौकिक संस्कृत में नहीं होकर अवधि जो कि जन सामान्य की भाषा मे थी दूसरी उसमें श्रीराम केवल एक राजामात्र नहीं थे वे भगवत वस्तल साक्षात् परब्रह्म का अवतार भी थे जो कि इस उद्देश्य से अवतार लेते है कि पृथ्वी पर का भार उतारने के साथ-साथ मर्यादा व भाईचारे की नीति व एक आदर्शराज्य की स्थापना की जाये । उस काल में निर्गुण व सगुण दोनों ही का पूर्ण प्रसार व प्रचार हो रहा था ऐसे में तुलसीदास जी ने एक ही राम के अनेक रूप सगुण भक्ति का आश्रय लेकर प्रस्तुत किये ।

रामराज्य की स्थापना जो कवि की आस्था का प्रमाण है । वह तुलसी का मनःकलप है परन्तु जिस अराजकता का वर्णन कवि ने किया है वह उनके युग का सत्य ही है ।[22] रावण राज्य के बहाने

गो. तुलसीदास जीने राक्षसी अत्याचारों से परिपूर्ण तत्कालीन राज्य का ही वर्णन किया था -

जेहि बिधि होई धर्म निरमूला ।
सो सब करहि वेद प्रतिकूला ॥
जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहि ।
नगर गांवपुर आंगि लगा वहिं ॥

या फिर -

हिन्दु समाज की यह दुःख़द स्थिति थी की भारत वर्ष की प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था खतरे में दिखाई पड़ती थी ।

बरन धरम नही अत्याचारी
श्रुति विरोधरत सब नरनारी

उस काल के साधु संतो ने भी अपने कर्तव्यपालन को छोड़ दिया था । चारों ओर पाखण्डी लोगों का बोलबाला था -

द्विज श्रुति बचक भूपप्रजाजन
कोउनहीं मान निगम अनुशासन
मारग सोई जा कहु जो भावा
पंडित सोई जो गालीबजावा
मिथ्यादंभ दम्भरत गोई
ता कहु संत कहइ सब कोई

तुलसीदास जीने कवि वाल्मीकि के काव्य को अपने रामचरित मानस का आधार माना है । यह सत्य है कि वाल्मीकि के रामायण में राजनैतिक वातावरण प्रधान है और मानस में भक्ति का । कथा वही है वातावरण बदल गया है । एक मे है इतिहास राजनीति व यथार्थ तो दूसरी मे है पुराणतत्व भक्ति और आदर्शवाद । इसके अलावा भी कहा गया है कि वाल्मीकि रामायण के रामकथा के माध्यम से

इस देश की राजनीति का जितना ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है उतना मानस की कथा से नही । मानस में राजनीति भी भक्ति मे विलीन हो गई है । वाल्मीकि रामायण का अंग प्रत्यंग आर्यों की सामाजिक रीती नीति के विस्तृत विवरण से शोभित है ।

यह अन्तर राम के वनवास चित्रकूट की सभा अगस्त की भेट रामबालिं संवाद - इनके समान दूसरा नीति का ग्रन्थ विश्व साहित्य मे नही है । हनुमान सुग्रीव अंगद के कार्य एवं चरित्र रावण की राज्यसभाओं, विभीषण की शरणागति हनुमान का अयोध्या भेजा जाना आदि प्रसंगों में देखा जा सकता है वाल्मीकि रामायण में इन प्रसंगो के चारों ओर राजनीति का वातावरण है और मानस मे भक्ति का । मानस में नीति और राजनीति दोनो ही भक्ति से परिचालित हुई है ।[24]

मानस की राजनीति के बारे में कई मत है जैसे कि डॉ. रामरतन भटनागर मानस मे राजनीति का स्थान धर्म ने ले लिया है । वाल्मीकि की प्रजा तुलसी की प्रजा से अधिक तेजस्वी है राजनीति तुलसी का विषय नही है । राजनीति तुलसी का ध्येय नही था । यह सत्य है परन्तु यह कथन पूरी तरह से सही नही कहा जा सकता है कई अन्य आलोचकों के अनुमान तुलसी ने राजनीति थोपी नही है उसमें वे तत्व अपने आप आत्मसात हो गये वे थिगरी की तरह अलग नही लगते हैं वे पूर्णतः प्रासंगिक है इसका प्रमुख कारण यह है कि तुलसीदास जी ने मध्ययुग की विचित्र राजनीतिक परिस्थितियों को भोगा था उन्होने उस काल के असमान शासन को देखा था । राजाओं के नित स्वार्थो की बलि बेली पर निरिह जनता को बलि चढते देखा था । कुशासन की वजह से अस्तव्यस्त अर्थतंत्र व बिगड़ी हुई सेन्य व्यवस्था को महसूस किया था । जहां पर उन्होने रामराज्य दशरथ कालीन अयोध्या राज, मिथिला राज्य सभीकी अच्छाईयों को प्रस्तुत किया था वही बाली, रावण आदि के राज्य की भयावह स्थितियों का भी वर्णन किया है और इसी प्रकार गोस्वामी जीने अपन विशदराजनीतिक ज्ञान का परिचय अपने मानस में दे दिया है यह उन्ही की कलम

थी जिसने राजनीति व भक्ति को साथ-साथ प्रस्तुत करते हुए राज्य धर्म को प्रस्तुत किया है अपने समन्वय सिद्धान्त का प्रयोग करके उन्होंने सर्वश्रेष्ठ बातों का चयन करते हुए एक आदर्श राज्य राजा परिवार प्रजा व सेवक सभी की अच्छाईयों को समन्वित कर मानस का रामराज्य प्रश्तुत किया है इस काल की सारी बुराइयों को भी उन्होंने रावणराज्य के रूप में जनता के समक्ष रखते हुए उनसे बचने की प्रार्थना की है । व संसार रूपी सागर से तरने में एक राम नाम रूपी नौका पर विराजमान होने की प्रार्थना भी की है । पाठक तुलसी की अनूठी काव्य कल्पना भाषा पर अनन्य अधिकार के साथ साथ राजनीति की विशद व्याख्या देख विस्मय विमुग्ध हो जाता है उसे मानना पड़ता है कि तुलसी एक साथ सब कुछ है वह भक्त है, कवि है समाज सुधारक है, दार्शनिक है और उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ भी है ।

तुलसादास जीने अपने राम साहित्य में पूर्ण मानवता और मानवजीवन की प्रत्येक दशा को प्रस्तुत किया है विशेष करके मानस में मनुष्य जीवन का ऐसा कोई पहलु नही जो यहां न उपस्थित किया गया हो । मानव जीवन के सर्वांगीण चित्र के साथ मर्याधा के अपरिचित प्रतिष्ठापन में भी मानस बे-जोड़ है उसके वर्णन, चरित्रांकन नीति राजनीति धर्म सभी अतुलनीय है । उसमें संस्कृति का भी निरूपण बहुत कुशल ढंग से हुआ है । मानसकार में विलक्षण साम्प्रदायिक सांस्कृति संघर्षमय युग चौकडी भर रहा था । मानस, भारत को राष्ट्रीय गौरव प्रदान करने वाली विश्व-विश्रुत अनर्धकृति है - रामाश्रयी साहित्य मे हर दृष्टि से देखने पर हमे राजनीति के आधारभूत - सिद्धान्तों का स्पष्ट समावेश दिखाई देता है । प्राचीन भारत मे सम्पूर्ण जीवन धर्ममय था व राजनीति धर्म पर ही आधारित थी । गोस्वामी तुलसीदास जी व आदि कवि वाल्मीकि दोनों ही मूल राम चरित्र के प्रणता राजनीति के समर्थक है । इसीलिए उन्होंने भी राम राज्य की राजनीति का विवेचन करते हुए उसके मूल आधारों का भी ध्यान रखा है प्रथम आधार होता है ।[26] धर्म क्योंकि प्राचीन भारत से ही राजा का प्रथम

कर्तव्य राज्यधर्म होता है अतः राज्य को चलाने के लिएं धर्म का पालन करना आवश्यक होता है ।

तुलसीदास जीने भी राजा की राज्य मे आवश्यकता मे धार्मिक और राजनीतिक कारणों पर प्रकाश डालते हुए तुलसी ने निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत किए हैं ।

गौ द्विज धेनु देव हितकारी, कृपासिन्धु मानुष तन धारी[27]
भगतभूमि भूसुर सुरभि सुरहित लागि कृपाल[28]

तुलसीदास जीन व अन्य सभी रामाश्रित काव्य के रचनाकारों ने समय सम पर राजा व उसके उन गुणों का विवेचन किया ही जिनकी वजह से ही उन्हे श्रेष्ठ माना जाता है -

धरम धुरन्धर नीति निधाना
तेजप्रताप सील बलवाना

इस प्रकार धार्मिक धुरन्धरता मे ही वैयक्ति या नैतिक गुण तेज प्रताप शील शूरवीरता आदि सम्मलित है । अतः धार्मिक विशिष्टता श्रेष्ठ राजा का गुण है । तुलसी दास उपर्युक्त नैतिक धार्मिक (जो दोनों मिलकर सामाजिक गुणों की रचना करते हैं) तथा राजनीतिक गुणों का समन्वय राजा राम में करते हैं ।[29] अबुल फजल ने भी राजा की आवश्यकता भी राजा की आवश्यकता समाज के चारों वर्गों में अपनी व्यक्तिगत योग्यता तथा जानकारी से संतुलन स्थापित करने तथा विश्व में उन्नति के सोपान पर चढने के लिए महसूस की है।[30]

धरमधुमीन भानुकुल भानू, राजाराम स्वबस्त्र भगवानु[31]
सत्यसंघ पालक श्रुतिहेतु ।
रामजन भुजंग मंगल हेतु ॥
गुरपितु मातु बचन अनुसारी ।
खलबल दलदेवाहितकारी ॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु

कोउ न रामसमजान जयारधु ।।[32]

प्राचीन काल से ही हमारी पूर्वजो ने भी धर्म को सर्वोपरि सत्ता माना है । प्रत्येक कार्य धर्म से सुशासित रहा है । प्राचीन भारत मे राजा भी धर्म से बंधा हुआ था । उसका व्यक्तिगत जीवन समन्वित होता था उसकी दैनिक दिनचर्या धर्म से दूर नहीं जा सकती थी । परिजन तथा पुरजन यहां तक की शत्रु के साथ भी उसका व्यवहार धर्मयुक्त होता था । अन्य राजो के साथ भी उसका सम्बन्धधर्म के आधार पर होता था । युद्ध विषयक नीति भी धर्म निर्दिष्ट होती थी । सारांश यह कि राजनीति का आधार धर्म था । केवल राजा ही नही प्रजा भी अपनके व्यक्तिगत एव सामाजिक जीवन मे सतत धर्म का पालन करती थी ।[33]

चलहि स्वधर्म निरत श्रुति रीति

श्रेष्ठ राजा को नितिज्ञ होना आवश्यक है नीति का मतलब राजनीति व नीति दोनों से ही है ये दोनों अन्योन्याश्रित होती है नैतिकता दैनिक जीवन की प्रथम आवश्यकता मानी जाती है ।[34] वाल्मीकि रामायण में राम को विग्रहवानधर्म कहा है - रामो धर्मस्य विग्रह - । पं.रामचन्द्र शुक्लने अपने ग्रन्थ गोस्वामी तुलसी दास ने राम के स्वरूप को जन सामान्य की दृष्टि से प्रस्तुत किया है । जनता ने श्रीराम मे लोक की रक्षा करने वाले प्राकृतिक धर्म का मनोहर रूप देखा उसने धर्म को दया दाक्षिण्य नम्रता सुशीलता पितृभक्ति सत्यवृत्त उदारता प्रजा पालन आदि ही मे नही देखा बल्कि क्रोध धृणा शोक विनाश और ध्वंस आदि म भी उसने देखा अत्याचारियों पर जो क्रोध प्रकट किया जाता है । असाध्य दुर्जनों के प्रति जो धृणा प्रकट की जाती है दीन दुःखियों को सताने वालों का जो संहार किया जाता है । कठिन कर्तव्यों के पालन में जो वीरता प्रकट की जाती है उसमें भी धर्म अपना मनोहर रूप दिखाता है जिस धर्म से लोक की रक्षा होती है वह वही व्यापक धर्म है ।[35]

कोटिल्य ने भी कहा है - स्व धर्म पालन से स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति होती है स्वधर्म के उल्लंघन से सर्वथा अव्यवस्था उत्पन्न हो जायेगी अतः राजा को चाहिए कि वह प्रजा को स्वधर्म का अतिक्रमण न करने दे। जो राजा प्रजा में स्वधर्म को स्थापित करता है वह सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करता है। आर्य मर्यादा के व्यवस्थित होने पर वर्णो व आश्रमों को अपने धर्म में स्थित कर देने पर त्रयी अर्थात् वेद द्वारा रक्षित यह लोक सदा ही उन्नति करता है।[36] राजा का धर्मवेत्ता होना भी आवश्यक माना गया है। राजा राम भी सभा में बैठकर

भूप धरम जे वेद बखाने सकल सादर सुखमाने
दिन प्रति देई विविध विधिदाना सूनेसास्त्र बरबेद पुराना ।[37]

तुलसीदास की आस्था उस काल में भी प्राचीन वर्णाश्रम पर ही थी -

बरनाश्रम निजनिजधरम
निरतबेदपथ लोग ।[38]

तुलसीदास जीने भारतीय प्राचीन शास्त्रों व वेदनीति के अनुसार राजनीति के चार अंगों साम, दाम, दण्ड, भेद स्वीकार किये हैं -

साम, दाम और दण्ड विभेदानृप उर बसहिनाथाकर वेदा
नीति धर्म के चरन सुहाए अस जिअजानि नाथ पहि आए

तुलसी दास जी राजा का निर्णय सर्वोत्तम निर्णय होता है यही मानत हैं उन्होंने अपने मानस में भरत को राजगद्दी स्वीकार करने के लिए समझाते हुए कहते हैं -

सोचि अबि प्रजोवेद बिहीना
ताजे निम धरमु विषय लयलीना
सोचिअ नृपति जी नीति न जाना
जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना[39]

तुलसीदास जीने राजा को नीति व धर्म दोनों के आवश्यक ज्ञान का होना बहुत जरूरी बताया है नीति के अभाव मे बड़े बड़े साम्राज्य ध्वंस होते देखे गये । शूर्पणखा अपने रावण का नीति हीन राज्य के नष्ट हो जाने की संभावना की ओर ध्यान आकृष्ट करती है ।

बोलीबचन क्रोधकरिभारी, देस कोसकै सुरति बिसारी,
करसिपान सोवसि दिनुराती, सुधि नहिं तबसिर पर आराती,
राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा हरिहि समर्पे विनुसतकर्मा
विद्या बिनु बिबेक उपजाए श्रमफल पढ़ें किए अरूपाँए
संग तें जती कुमंत्र ते राजा मानते ग्यान पान ते लाजा
प्रीति प्रनय बिनु मद त गुनी, नासहि बेगिनीते अस सुनी ।।[40]

इसी तरह दोहावली में भी स्पष्टतः अन्याय और अनीति को रावण के विनाश का कारण माना है ।

राज करत बिनु काज ही करहिं कुर्वात कुमाज
तुलसी ते दसकथ ज्यों जइह सहित समाज - दो [41]

राजा को नीति का पालन विशेष देशकाल एवं सामाजिक परिवेश के सन्दर्भ में पालन करने की मंत्रणा दी गई है -

धर्म धुरीन आ धीर नय नागर -
सव्यसनेह सील सुखसागर -

देसकालु लखि भी समाजु नीतिप्रीति पालक रघुराजु[42]

राजु कि रह इन नीति बिनु जानें [43], कहकर राजा के राजनीति के ज्ञान का परम आवश्यक होना बताया है ।

राजनीति के अलावा रामाश्रयी साहित्यों में प्राचीन भारतीय संस्कृति का महत्व प्रतिपादित किया गया है । रामायण आदि काल से भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर के रूप में माना जाता रहा है । यह सत्य है कि कवि के काव्य पर उस काल की संस्कृति की अमिट

छाप दिखाई देती है - कवि और काव्य उस समाज और संस्कृति से अभिन्न रूप से सम्बन्धित होते हैं जिनमे उनका जन्म होता है । इसीलिए काव्य अथवा साहित्य के द्वारा हम युगचेतना तथा सांस्कृतिक पहुँचने का उपक्रम करते हैं कोई भी काव्य विशुद्ध काव्य नही होता है क्योंकि उसमें लक्षित या अलक्षित रूप से समाज और संस्कृति के प्रति कवि का दृष्टिकोण संपुटित रहता है ।[44]

रामाश्रयी साहित्यों में हमे उस काल की अर्थात् रामायणकालीन संस्कृति का परिचय मिलता है । रामायण आदि कवि वाल्मीकि का महत्वपूर्ण महाकाव्य है । इसमें आर्य व आर्येतर संस्कृति को दण्डक बनकी सीमा मानकर विभक्त किया गया है । इस काव्य से तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, भौगोलिक व आर्थिक स्थितियों का वास्तविक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । एक आदर्श राज्य की परिकल्पना के साथ तत्कालीन संस्कृति के मूल्यों का पर्यालोचन हुआ है । आर्य जाति ने सप्त सिंधु की भूमि पर अधिकार कर दक्षिण की ओर प्रभुत्व स्थापित किया दक्षिण में आर्य संस्कृति के मूल्यों की स्थापना का इतिहास वर्णित किया गया है ।[45]

भारतीय संस्कृति अपने भीतर अनकों दूसरी संस्कृतियों के अवशेषों का समावेश किये हुए है भारत वर्ष पर अनेकों विभिन्न संस्कृतिवाले लोगो ने आक्रमण किये और कुछ समय पश्चात् यहां से चले गये पर भारतीय संस्कृति अक्षुण रही उसमें उसकी गरिमामय स्वरूप को नही व्यजा नवीन संस्कृति की अच्छाइयों को अपने मे आत्मसात करा परन्तु उनकी बुराइयों को उसी प्रकार त्याग दिया जैसे कि-सार सार तो गही रहे, थोथा देई उड़ाय - ।

उनका सार ग्रहण कर व्याज्य को छोड़ दिये जाता हैं इस तरह यह सत्य प्रतीत होता है कि संस्कृति निरंतर प्रवहमान सतत विकसित तथा नव नवोन्मेषलशालिनी जातीय प्रतिभा हैं [46] - संस्कृति का निर्माण एक या दो दिन में नही हो सकता है । संस्कृति युगों की धरोहर होती है संस्कृति मं की उपमा हम सागर से दे सकते हैं । उसकी

असीमता को कोई माप नहीं सकता है । उसमें जो कुछ भी मिलता है उसी का होकर हुए जाता है । फिर भी उसमें कुछ भी परिवर्तन नही दिखाई देता है सागर ही की तरह वह भी अपने भीतर अमूल्य खजानों को छुपाए रहती है । संस्कृति उस काल का परिचय होती है परन्तु उसमें प्राचीन परम्पराओं का समावेश भी होता है ।

वाल्मीकि और कालीदास भी अपने ढंग से भारतीय संस्कृति के कवि है उन्होंने राम के महान चरित्र को संस्कृति के मानदण्ड के रूप में प्रस्तुत किया है । गोस्वामी तुलसीदास को भारतीय संस्कृति के व्याख्याता कवि और चिन्तक के रूप में केन्द्रिय स्थान प्राप्त है वाल्मीकि आदि कवि है उन्होंने रामकथा को लेकर दाम्पत्य प्रेम और करूणा की जो धारा बहार है वह पारिवारिक स्नेह सूत्रों चारित्रिक औदात्य और राजनीतिक तेजस्विता मे अद्वितीय है ।[47] अतः उसमे वैदिक संस्कृति से लेकर कलियुगी संस्कृति तक सभी के दर्शन होते हैं । आदि कवि का चित्रफलक एक सम्पूर्ण राष्ट्र की सीमाओं को अपने भीतर बान्ध लेता है । आसमुद्र क्षितीश चक्रवर्ती सम्राट के रूप में राम की कल्पना करते हुए भी उन्होंने अपने चरित्र नायक को श्रेष्ठतम मानवगुणों से विभूषित किया है । वे नर को नारायण बना देते हैं । मानव की परिपूर्णता जिस देवत्व मे है उसका चित्रण उन्होंने राम मे किया है । वह काव्य के तो मानदण्ड है ही प्रकृति और मनुष्य के सहज सम्बन्धों के भीतर प्रचण्डकर्म के आनन्द और लोकसंग्रह के लिए समर्पित व्यक्तित्व के चित्रण में भी रामायण नितान्त सफल है ।[48] प्राचीन राम साहित्य के व्यापक क्षेत्र को पूर्णतया सम्पन्न करनेवाले विविध ग्रन्थों में सर्व प्रथम स्थान इस रामायण का है इससे ही प्रेरणा पाकर संस्कृत के रामाश्रित महाकाव्यों की रचना हुई है।[49]

इसके बाद संस्कृत का योग कालिदास के रघुवंश में मानव चरित्र का ओर भी बड़ा चित्रफल कलिया है जोमहाराज दिलिप से महाराज अग्निवर्णतक चलता है एक सम्पूर्ण राजकुल के उत्थान पतन का व्यौरा देकर उन्होंने राजा-प्रजा के सम्बन्ध के तीन सप्तक वहा प्रस्तुत किये हैं वे मूलतः भारतीय संस्कृति के कवि हैं । उन्होंने अपने साहित्य

में भारतीय संस्कृति के लौकिक पक्षों उसकी भौतिक सुख समृद्धि के सर्वश्रेष्ठ क्षणओं तथा भोग ऐश्वर्य तप एवं त्याग सभी के संवेगपूर्ण चित्रों में हमें गुप्तकालीन सम्पन्नता शालीनता व सौन्दर्य बौध का चरमोत्कर्षिक स्वर्णयुग की स्पष्ट झलक दिखाई देती है । भारतीय संस्कृति की धरोहर के सहजने के लिए हम उनके अनन्तकाल तक ऋणी रहेंगे ।[50]

तुलसीदास जीने अपने काव्य का सृजन जिस काल में किया था उस काल में न राम राज्य का यथार्थ था जिसे आदि कवि ने प्रत्यक्ष देखा था नहि कालिदास के समक्ष जो गुप्त कालीन स्वर्ण युग था उसकी परिकल्पना भी नही की जा सकती थी । तुलसीदास जीने तो वही भोगा और देखा था जो उन्होने कलिकाल के नाम से प्रस्तुत किया है उन्होंने जनता की दीनता, महामारी, अकालकष्ट तथा रोगवशोकं को ही दिखाया । तुलसीदास जीने कवितावली और विनयपत्रिका में भगवान राम को ही इस हाल से परिचित करना चाहा है । इसीलिए उन सभी बातों का वर्णन भी किया है जो सत्य होने के कारण अकबरी शासन मे लगे हुए स्वर्ण के पैबंदी को नीचे से झांकनेवाले दुर्दशारूपी छेदों को सबके सामने प्रस्तुत करते हैं । इसी लिए तुलसीदास जीने इस रामाश्रयी साहित्य की धारा में रामचरितत्र की रचना कर रामचरित मानस के रूप में करते हुए प्राचीन भारतीय संस्कृति की 5 हजार वर्ष पुरानी गरिमा को बनाये रखा है । अपने समय के सांस्कृतिक हाल की भी उन्हे गहरी अनुभूति है जो उन्होंने उनके कलियुग वर्णन मे स्पष्ट दिखाई दी है ।

निश्चय ही उनका रामचरित मानस भारतीय संस्कृति धर्म चेतना तथा जातीय आदर्शो का विश्वकोष है ।

उनके रामाश्रयी साहित्य को हम कुछ इस प्रकार से समझकर तीन भागो में विभत्स कर सकते हैं ।

(1) लोकस्तर की संस्कृति

नहछू बरवै रामायण, रामाज्ञा प्रश्न, जानकी मंगल तथा पार्वती

मंगल ।

(2) व्यक्ति चेतना स्तर के काव्य - रामगीतावली तथा हनुमान बाहुक।

(3) सांस्कृतिक धरोहर को व्यक्त करनेवाले काव्य रामचरित मानस - विनयपत्रिका तथा कवितावली ।

हिन्दी की मध्यकाली काव्य धारा में तुलसीदास को रामाश्रयी साहित्य भेट अतुलनीय है उसमें जीवन के हर स्वरूप के सांस्कृतिक पक्ष का परिचय मिलता है जैसे लोक संस्कृति, राज्य संस्कृति, बानर संस्कृति, असुर संस्कृति, कलीकालीन संस्कृति व रामराज्यकालीन संस्कृति रामायणकालीन संस्कृति का परिचय देते हुए तुलसीदास जीने राजा व उसके कर्तव्यप्रजा के कर्तव्य परिवार के कर्तव्य राजधर्म की श्रेष्ठता समाजसुधार प्रशासन, शिक्षा का महत्व ऋषिमुनियों के स्थान की समीक्षा की है । राजा व प्रजा आपसी सदभावना के साथ, अपने अपने कर्मों मे रत रहते थे मंत्रियों, सचिव राजा, अमात्य सभी का उल्लेख मिलता है ।

ब्राह्मणों का स्थान सर्वश्रेष्ठ था उन्हें आदर की दृष्टि से देखा जाता था वे भी अपने निज स्वार्थों का त्याग करके ही अपने धर्म का पालन करत थे । सम्पूर्ण श्रेष्ठता का प्रतम विचार किया जाता था । वैमनस्य व दुराग्रह के लिए कोई स्थान नही था । तपोवन एवं गुरूकुल की पद्धति ही सर्वश्रेष्ठ है इसे राम को गुरूकुल मे भेजकर स्पष्ट किया गया था । पति पत्नी के आपसी सम्बन्ध किस प्रकार के होने चाहिए इसे भी स्पष्ट किया है -

इसके विरूद्ध उन्होने असुर संस्कृति का भी वर्णन किया है रावण के रूप में उन्होंने उस काल के स्वार्थी राजाओं का ही चित्रण किया है । जहां राजगद्दी के लिए अपने सगे सम्बन्धी को भी मार दिया जाता था । मुगलों में भी राजगद्दी के पीछे विद्रोह आये दिन होते रहते थे । कैकई के निज स्वार्थ से पूरा परिवार बिखर गया था

इसे स्पष्ट किया है । रावण राज्य के अन्दर की भी आन्तरिक स्थिति की समीक्षा तुलसीदास जीने बहुत ही सुन्दर ढंग से की है ।

राम काव्य धारा या रामाश्रयी साहित्य का उद्देश्य मूलतः राम के उस स्वरूप को प्रस्तुत करना था जो कि युगीन चेतना का जागृत कर एक नवीन मार्ग प्रशस्त कर सके ।